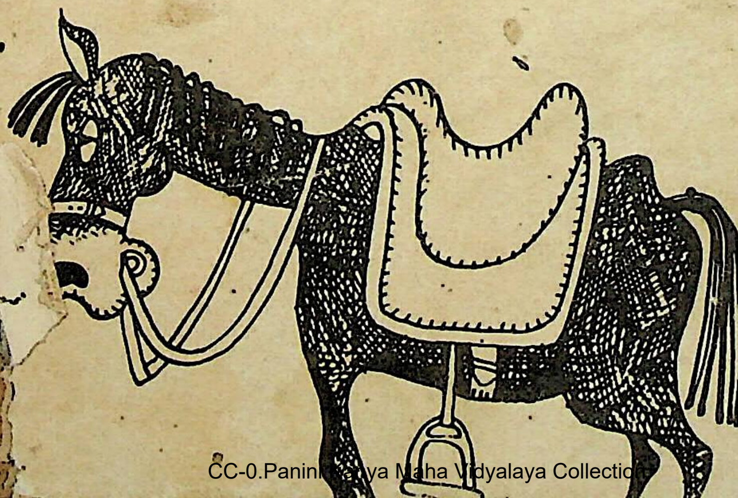
...माई

(...सियाई लोककथा)

...के. वरीसोव।





कालीन म...
हर तरह के...
उसे बायें घु...
शक्ति थी कि...
उड़ी !" तो...
को उसके इच्छि...

जिस समय...
घुड़सवार उनक...

उसने पूछा...

"हम लोग...
हम दोनों भ...
नहीं हुआ,"...

"हम दोनों...
आप देखिये,...
स्वादिष्ट भोज...
घुमाया जाये...
कर कहे : "...
देगा।"

घुड़सवार...
अलग हट जा...
सोचने दो।"

"बहुत अ...

घुड़सवार...
मार कर बैठ...
उड़ो !"

आप लोग किस लिए झगड़ा कर रहे हैं।"

क्की और कालीन के बारे में झगड़ा कर रहे हैं।
के बीच इन दोनों चीजों के बारे में समझौता
हये... उत्तर दिया।

व्यक्ति चक्की और कालीन दोनों चीजें चाहते हैं।
द चक्की को दायीं ओर घुमाया जाये तो मेज पर
ौर पेय-पदार्थ आ जायेंगे और यदि उसे बायीं ओर
सोना झरने लगेगा। और यदि कोई कालीन पर चढ़
कालीन उड़ो! तो वह उसे इच्छित स्थान पर पहुंचा

कहा, "मैं तुम्हारे विवाद को तय कर दूंगा। जरा



प्रतिमा-नाटकम्

[उत्तरमाध्यमिकपरीक्षार्थं माध्यमिकपरिषदा स्वीकृतम्]



सम्पादकः

ललिताप्रसाद पाण्डेयः

शास्त्री, साहित्याचार्यः

प्रकाशकः

रामसेवक आर्य कुमार

१६, अमीनाबाद पार्क

लखनऊ

सोल ऐजेन्ट

रामप्रसाद एण्ड ब्रादर्स

पाठ्यपुस्तक प्रकाशक, इटावा

अष्टमं संस्करणम्] जून १९६४ [मूल्यम् १'२५ पै.

सुप्रसिद्ध नाटककार भास।

संस्कृत वाङ्मय अपने उत्तम नाटक साहित्य के निमित्त भी जगत् विख्यात है। नाटककारों में कालिदास, भास और भवभूति अप्रतिम अनमोल रत्न हैं। महाकवि कालिदास के पश्चात् हमारी सबसे अधिक श्रद्धा भास के प्रति है। कारण अत्यन्त स्पष्ट है। भास न केवल अपनी भाव-व्यञ्जना तथा सरसता के प्रतीक हैं, वरन् वे सरलता, भाषाधिपत्य तथा माधुर्य के हेतु भी अद्वितीय हैं।

आपका समय—कालिदास तथा भास के समय-निर्णय में अनेक गुत्थियाँ रही हैं और कुछ अब भी हैं। पर कालिदास ने भास को बड़े सम्मान के साथ अपने नाटक मालविकाग्निमित्रम् में स्मरण किया है, अतः यह निश्चय है कि वे कालिदास से पहिले थे। म० म० गणपति शास्त्री तथा म० म० हरप्रसाद जी शास्त्री आपको ६००-४०० ई० पू० का मानते हैं, जब कि डाक्टर काशीप्रसाद जयसवाल आपको दूसरी–१ शताब्दी ई० पू० का सिद्ध करते हैं। प्रोफेसर देवधर आदि विद्वान् आपको ईसवी पूर्व शताब्दी का मानते हैं। सत्य तो यह है कि आपका काल-निर्णय तभी निश्चित हो सकता है, जब कि कालिदास, शूद्रक, आदि का काल भी निश्चित हो जाय। आपके कालिदास से पूर्व होने का एक अन्य पुष्ट प्रमाण है कि आपके नाटकों में जिस सामाजिक परिस्थिति का चित्रण है, वह कालिदास के नाटकों में चित्रित सामाजिक परिस्थिति से पर्याप्त रूप से प्राचीन है। फिर आपके नाटकों में बौद्ध और जैन धर्म के प्रति कोई सद्भावना का भाव परिलक्षित नहीं होता, प्रत्युत जो भी धार्मिक आदर्श प्रस्तुत किया गया है, वह वैदिक धर्म का ही आदर्श है। इस आधार पर आपकी प्राचीनता प्रमाणित है।

आपकी रचनाएँ तथा शैली—

श्री गणपति शास्त्री के अनुसार आपने १३ रचनाएँ कीं, जो निम्न-लिखित हैं—

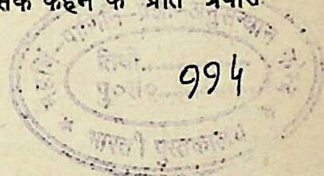
१. स्वप्नवासवदत्तम्
२. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्
३. अविमारकम्
४. चारुदत्तम्
५. प्रतिमानाटकम्
६. अभिषेकनाटकम्
७. पञ्चरात्रम्
८. मध्यमव्यायोगः
९. दूतवाक्यम्
१०. दूतघटोत्कचम्
११. कर्णभारम्
१२. उरुभंगम्
१३. बालचरित्रम् ।

इनमें से स्वप्नवासवदत्तम् तथा प्रतिमानाटकम् का नाम तो प्रत्येक की जिह्वा पर रहता है। भास ने अपने नाटकों की कथावस्तु अधिकतर धार्मिक प्रवृत्ति से प्रेरित होकर निश्चित की है। प्रतिमा में भी यह भावना भरपूर है।

आपकी शैली के विषय में कुछ कहना असंगत न होगा।

आप बड़े से बड़े दर्शन के विषय को तथा दुरूह बातों को कितनी

स्वाभाविकता तथा सरलता से कह जाते हैं कि उसके कहने के प्रति प्रयास का आभास भी नहीं होता।



यथा—

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या।
फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति ॥ १३ ॥

और भी

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च।
त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ॥ २५ ॥

क्या ही स्वाभाविक उक्तियाँ हैं।
आपकी करुणा करुणा को भी करुणा सिखा सकती है।

यथा—हा वत्स ! राम जगतां नयनाभिराम !
हा वत्स ! लक्ष्मण सलक्षणसर्वगात्र।
हा साध्वि मैथिलि पतिस्थितचित्तवृत्ते !
हा हा गताः किल वनं बत मे तनूजाः ॥ ४ ॥

उपमा की अनुपमता—

सूर्य इव गतो रामः सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ॥ ७ ॥

आपका प्रकृतिवर्णन—

आपका प्रकृति-वर्णन सूक्ष्म तथा व्यापक दोनों है। सूक्ष्म इसलिए कि प्रत्येक दृश्य रेखा-चित्र ही नहीं पूर्ण चित्र के रूप में अंकित होता है,

और व्यापक इसलिए कि भास की नाटक कृतियों में प्रकृति के अनेक दृश्य एक के पश्चात् एक आया करते हैं।

यथा—

खगावासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद्रविरपि च संक्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥

इसके अतिरिक्त भास चरित्र-चित्रण में मानों सिद्धहस्त हैं। आपका कोई पात्र मर्यादा का उल्लंघन करना जानता ही नहीं। अतः आपके प्रति जो कुछ प्रशंसात्मक शब्द कहे जायँ वे थोड़े ही हैं।



संक्षिप्त कथा

संस्कृत के प्राचीन और सुप्रसिद्ध नाटककार भास ने इस नाटक के कथानक में राम-कथा का आश्रय लिया है, किन्तु उन्होंने अभिनय की सुविधा तथा रोचकता की दृष्टि से इसमें मूल-कथानक से यत्रतत्र रंचमात्र परिवर्तन कर दिया है। वाल्मीकि-रामायण के अयोध्याकाण्ड और अरण्यकाण्ड में वर्णित वृत्त ही वस्तुतः इस नाटक की आधारशिला हैं। प्रतिमा के सात अङ्कों में भास की इतिवृत्त-कल्पना जिस नाटकीय घटनाचक्र की सृष्टि करती है, उसका स्वरूप इस प्रकार है—

अङ्क (१)

महाराज दशरथ के राजप्रासाद में राम के राज्याभिषेक की तैयारी हो रही है। महाराज दशरथ रामचन्द्र के अभिषेक की तिथि निश्चित करते हैं, किन्तु यह निश्चय इतनी शीघ्रता से किया जाता है कि अन्तःपुर के लोग भी नहीं जान पाते।

कञ्चुकी प्रतिहारी को सूचना देता है, कि महाराज दशरथ ने रामचन्द्र के राज्याभिषेक की सामग्री उपस्थित करने के लिए आज्ञा दी है। यह समाचार सुनकर राज्य की समस्त जनता प्रसन्न होती है। कुछ ही समय में महाराज दशरथ को विदित होता है, कि राजछत्र, राजसिंहासन, मंगल-कलश आदि सभी सामग्रियाँ तैयार हैं और गुरु वसिष्ठ राज्याभिषेक प्रारम्भ करने के लिए उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सीता अपने हर्म्य कक्ष में अपनी चेटियों के साथ हास-परिहास में लगी हैं। इसी समय एक अन्य चेटी वल्कल-वस्त्र लेकर उनके समीप आती है। सीता उससे पूछती हैं, "यह वल्कल-वस्त्र तुम्हें कहाँ से मिला?"

चेटी उत्तर देती है, "मैं इसे नाट्यशाला से बिना बताये ले आती हूँ।" पहले तो सीता उस पर अप्रसन्न होती हैं, पर वल्कल की सुन्दरता से आकृष्ट होकर स्वयं उसे पहिनने लगती हैं। उन्हें देखकर चेटी कहती है, "ये आपके शरीर पर अधिक शोभा देते हैं।"

उसी समय एक दूसरी चेटी आकर राम के राज्याभिषेक की सूचना देती है। प्रसन्न होकर सीता उसे अपने आभरण देती हैं, पर एकाएक अभिषेक-समारोह के मंगल-वाद्य बजते-बजते रुक जाते हैं। इसी समय रामचन्द्र जी भी सीता के समीप पहुँच जाते हैं। वे प्रसन्न हैं, क्योंकि उनका अभिषेक रोक दिया गया है। सहसा उनका ध्यान सीता के वल्कल-वस्त्रों पर जाता है। वे सीता से उनके धारण करने का कारण पूछते हैं, पर स्वयं भी उन्हें पहिनने की चेष्टा करते हैं। अभिषेक के समय पति के द्वारा वल्कल धारण करने से सीता को अमंगल की आशंका होती है। रामचन्द्र उनको सान्त्वना देते हैं, और कहते हैं, कि परिहास के समय हुई बातों से अमंगल नहीं होता। इतने ही में अन्तःपुर से करुण क्रन्दन सुन पड़ता है, और महाराज दशरथ के मूर्छित होने का समाचार चारों ओर फैल जाता है। क्रोध के आवेश में कुमार लक्ष्मण उसी स्थान पर पहुँचते हैं और कैकेयी से प्रतिशोध लेने की दृष्टि से समस्त स्त्रीजाति को समाप्त कर देना चाहते हैं। रामचन्द्र उन्हें समझाकर शान्त करते हैं। इसके अनन्तर तीनों वनवास के लिए प्रस्तुत होते हैं।

अङ्क (२)

राम, सीता और लक्ष्मण को वन जाने से रोकने में असमर्थ महाराज दशरथ शोकाकुल हैं और अन्तःपुर में मूर्छित पड़े हैं। कौसल्या उन्हें सान्त्वना देने की चेष्टा कर रही हैं। उधर सीता और लक्ष्मण सहित राम को रथ पर बिठाकर सुमन्त्र वन ले जाते हैं और वहाँ से थकित से खाली रथ लेकर लौटते हैं। सुमन्त्र को अकेला आया जान कर महाराज दशरथ और भी विह्वल हो उठते हैं, वे सुमन्त्र से पूछते हैं, "क्या तुमसे विदा होने

के पहिले उन सबने कुछ कहा था ?" इस पर सुमन्त्र कहते हैं, "वे सब अयोध्या की ओर उन्मुख होकर, आँखों में आँसू भर कर कुछ कहना तो चाहते थे पर कण्ठावरोध हो जाने के कारण कुछ कह न सके और वन की ओर चले गये।" यह सुन कर महाराज दशरथ के शोक की सीमा नहीं रहती। वे मूर्छित होकर कभी न उठने के लिए गिर पड़ते हैं।

अङ्क (३)

अयोध्या की सीमा के समीप ही स्वर्गीय रघुवंशी राजाओं की प्रतिमाओं से सजाया हुआ एक मंदिर है। उसमें दशरथ की प्रतिमा का स्थापन संस्कार होने जा रहा है, कौसल्यादि रानियों के आगमन की प्रतीक्षा हो रही है। उधर दशरथ के अस्वस्थ होने का समाचार सुनकर भरत अपने मामा के घर से अयोध्या आ रहे हैं। नगरी की सीमा पर पहुँच कर वे कृत्तिका नक्षत्र होने के कारण प्रवेश नहीं करते, और वहीं मन्दिर को देखकर रुक जाते हैं। वे उस प्रतिमागृह को देवमन्दिर समझकर देवताओं की वन्दना करने के लिए प्रतिमागृह में प्रवेश करते हैं। ज्यों ही वे प्रणाम करना चाहते हैं, त्यों ही प्रतिमागृह का अध्यक्ष देवकुलिक उन्हें रोक देता है और बतलाता है कि ये देवमूर्तियाँ नहीं हैं, वरन् रघुवंशी राजाओं की ही प्रतिमाएँ हैं। यह सुनकर भरत प्रसन्न होते हैं। वे प्रत्येक प्रतिमा का परिचय पूछते हैं। देवकुलिक क्रमशः परिचय देता हुआ दशरथ की प्रतिमा के पास पहुँचता है और उसका भी परिचय देता है। यह सुनकर भरत विक्षुब्ध होकर देवकुलिक से पूछते हैं कि, "क्या जीवित राजाओं की भी प्रतिमाएँ यहाँ स्थापित की जाती हैं ?" देवकुलिक के यह उत्तर देने पर कि, "नहीं नहीं, केवल मृतकों की ही प्रतिमाएँ स्थापित की जाती हैं", भरत मूर्छित हो जाते हैं। चेतना पाते ही भरत देवकुलिक से अयोध्या का सम्पूर्ण वृत्तान्त पूछते हैं और अपने ही निमित्त राम का वनगमन सुनकर पुनः मूर्छित हो जाते हैं। उसी समय सुमन्त्र के साथ कौसल्या आदि रानियाँ वहाँ पहुँच जाती हैं, और भरत को मूर्छित देखकर स्वयं भी व्याकुल हो

जाती हैं। भरत मूर्छा से उठकर सुमन्त्र के साथ अपनी माताओं से मिलते हैं। साथ ही वे कैकेयी पर अत्यन्त क्रुद्ध होकर स्वयं भी वन जाने का दृढ़ निश्चय कर लेते हैं।

अङ्क (४)

राम सीता और लक्ष्मण के साथ प्रसन्नतापूर्वक वन में रहने लगते हैं। वहीं सुमन्त्र के साथ भरत भी पहुँचते हैं। रामचन्द्र उन्हें दूर ही से उनके स्वर से पहचान लेते हैं और मिलने के लिए उत्कण्ठित हो उठते हैं, और उनके स्वागतार्थ सीता को भेजते हैं। प्रेमाश्रुपूर्ण सीता उन्हें राम के पास ले आती हैं।

राम गद्गद् होकर भरत से मिलते हैं। भरत सस्नेह लक्ष्मण को हृदय से लगा लेते हैं। भ्रातृ-मिलन के पश्चात् भरत अयोध्या लौटने के लिए रामचन्द्रजी से अनुनय-विनय करते हैं। राम उनको समझा देते हैं और कहते हैं, "पिता की आज्ञा के अनुसार मैं चौदह वर्ष वन में रहकर ही लौट सकूँगा। इस समय वहाँ जाकर तुम्हीं राज्यभार सँभालो।" भरत बड़े ही कष्ट के साथ आज्ञा को शिरोधार्य करके उनसे प्रार्थना करते हैं, "आप कृपया अपनी चरणसेवित पादुकाएँ मुझे दे दें और यह वचन दें कि वनवास की अवधि समाप्त होने पर अपना राज्यभार ग्रहण करना स्वीकार करेंगे।" रामचन्द्र की इस बात को मान लेने पर भरत उनकी पादुकाएँ लेकर अयोध्या लौट आते हैं।

अङ्क (५)

रामचन्द्रजी तपोवन में राक्षसों का दमन करते हैं, अतः वे उनसे रुष्ट हो जाते हैं। फलतः रावण संन्यासी का कपट-वेष धारण कर राम के पास पहुँचता है। रामचन्द्र उसका आतिथ्य-सत्कार करते हैं। वह अपने को वेदज्ञानी और श्राद्धकर्म का विशेषज्ञ बतलाता है। राम बड़े ही उत्सुक होकर पिता के श्राद्ध के लिए उससे सामग्री पूछते हैं।

वह उन्हें स्वर्णमृग से 'निवाप' करने का उपदेश देता है। साथ ही वह यह

भी बतलाता है कि वे स्वर्णमृग यहाँ अलभ्य हैं, केवल हिमालय की चोटी पर ही मिल सकते हैं। राम स्वर्णमृग लाने के लिए उद्यत होते हैं कि सहसा एक स्वर्ण-मृग उधर से आ निकलता है। धनुष-बाण लेकर राम स्वयं उसके पीछे दौड़ते हैं; क्योंकि लक्ष्मण एक महर्षि के स्वागतार्थ कहीं जा चुके थे। सीता संन्यासी वेषधारी रावण का स्वागत करने के लिए रुक जाती हैं। रावण सीता को अकेली देखकर अपने वास्तविक रूप में आ जाता है। उसे देखते ही भीत होकर सीता भागने की चेष्टा करती हैं। रावण हठात् उन्हें पकड़ कर ले जाता है।

सीता का करुण क्रन्दन सुनकर जटायु रावण के मार्ग में बाधा उपस्थित करता है, इसपर दोनों में घोर संग्राम हो जाता है। अन्ततः रावण अपने पराक्रम से जटायु को धराशायी कर देता है।

अङ्क (६)

मुनि-जन सीता के अपहरण का समाचार सुनकर राम को उसकी सूचना देने के लिए उन्हें खोजने निकल जाते हैं। उधर सुमन्त्र जनस्थान से लौटकर भरत से मिलते हैं। पहिले तो वे वन की उन दुर्घटनाओं को छिपाना चाहते हैं, किंतु अधिक पूछने पर रावण द्वारा किये गये सीताहरण का भी वृत्तान्त बतला देते हैं। यह सुनकर भरत क्रोधाग्नि से जलने लगते हैं और कैकेयी पर अत्यधिक कुपित होते हैं। कैकेयी स्वयं अपने किये पर पश्चात्ताप करती और अपने को धिक्कारती है।

अङ्क (७)

रामचन्द्रजी लंका में रावण का वध करके तथा विभीषण को वहाँ का राज्य सौंपकर विमान द्वारा सीता आदि के साथ जनस्थान पहुँच रहे हैं। मुनिजन उत्सुक होकर उनके स्वागतार्थ उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तपोवन में पहुँच कर राम, सीता और लक्ष्मण वहाँ की सुखद स्मृति की चर्चा करते हैं। उसी समय वनवास की अवधि समाप्त जानकर सुमन्त्र एवं माताओं के साथ भरत वहाँ पहुँच जाते हैं। वे सबके समक्ष विनम्रता पूर्वक राज्यभार रामचन्द्रजी के चरणों पर समर्पित कर देते हैं। रामचन्द्रजी गुरुजनों की आज्ञा से उसे स्वीकार कर लेते हैं। तत्पश्चात् सभी लोग पुष्पक विमान पर बैठकर अयोध्या आते हैं।

प्रतिमा नाटकम्

पात्र-परिचयः

पुरुष पात्र

१. सूत्रधार—	नाटक का स्थापक।
२. राजा—	महाराज दशरथ।
३. राम—	महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र, नाटक के नायक।
४. लक्ष्मण—	महाराज दशरथ के पुत्र, सुमित्रा-तनय।
५. भरत—	महाराज दशरथ के पुत्र, कैकेयी-तनय।
६. शत्रुघ्न—	लक्ष्मण के सहोदर भाई।
७. सुमन्त्र—	महाराज दशरथ के मन्त्री।
८. सूत—	भरत के सारथी।
९. रावण—	नाटक का प्रतिनायक, लङ्काधिपति।
१०. वृद्धतापसद्वय—	रावण और जटायु के युद्ध को देखनेवाले।
११. देवकुलिक—	प्रतिमागृह का पुजारी।
१२. तापस—	दण्डकारण्य के तपस्वी।
१३. नन्दिलक—	तपस्वी का परिजन।
१४. भट—	राज-पुरुष।
१५. काञ्चुकीय—	अन्तःपुर का वृद्ध सेवक।

स्त्री पात्र

१. नटी—	सूत्रधार की स्त्री ।
२. कौसल्या—	महाराज दशरथ की प्रथम पत्नी, राम की माता ।
३. कैकेयी—	महाराज दशरथ की द्वितीय पत्नी, भरत की माता ।
४. सुमित्रा—	महाराज दशरथ की तृतीय पत्नी, लक्ष्मण की माता ।
५. सीता—	मिथिलेश महाराज जनक की कन्या, राम की पत्नी ।
६. अवदातिका—	सीता की सखी ।
७. चेटी—	सीता की परिचारिका ।
८. प्रतीहारी—	अन्तःपुर की द्वारपालिका ।



राष्ट्र गान

जन-गण-मन अधिनायक जय हे
भारत-भाग्य-विधाता ।
पंजाब, सिंधु, गुजरात, मराठा,
द्राविड़, उत्कल, वंग
विंध्य, हिमाचल, यमुना, गंगा,
उच्छल जलधि तरंग
तव शुभ नामे जागे
तव शुभ आशिष माँगे
गाहे तव जय गाथा ।
जन-गण-मंगल-दायक, जय हे,
भारत-भाग्य-विधाता
जय हे, जय हे, जय हे,
जय, जय, जय, जय हे



प्रतिमा-नाटकम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

विवृति—

नान्दी—आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥

अर्थात् नाटक के प्रारम्भ में जिस वाक्य के द्वारा देवता, द्विज, राजा आदि की स्तुति की जाती है उसकी नान्दी संज्ञा होती है। अथवा नान्दी अर्थात् दुन्दुभि नाटक के प्रारम्भ में श्रोताओं को सावधान करने के लिए बजायी जाती है। "दुन्दुभिस्त्वानको भेरी भम्मा नासूक्ष्म नान्द्यपि" इति वैजयन्ती । सूत्रधार—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते ।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥

अर्थात् नाट्य के साधन सूत्र कहे जाते हैं; उन्हें जो धारण करता है उसे सूत्रधार कहा जाता है। वह पूर्वरङ्ग का विधान करके चला जाता है।

(नान्दीपाठ के अनन्तर सूत्रधार प्रवेश करता है)

सूत्रधारः—सीताभवः पातु सुमन्त्रतुष्टः सुग्रीवरामः सहलक्ष्मणश्च ।
यो रावणार्यप्रतिमश्च देव्या बिभीषणात्माभरतोऽनुसर्गम्
॥ १ ॥

(नेपथ्याभिमुखमवलोक्य)

आर्ये ! इतस्तावत् !

अन्वयः—सीतेति—सीताभवः सहलक्ष्मणः सुमन्त्रतुष्टः सुग्रीवरामः अनुसर्गम् पातु यः रावणार्यप्रतिमः देव्या बिभीषणात्माभरतः (अस्ति) ।

व्याख्या—सीताया भवः =क्षेमः तत्कारणम् इत्यर्थः । कार्यकारणयोरभेदोपचारकृतः प्रयोगः । सहलक्ष्मणः लक्ष्मणसहितः, सुमन्त्रतुष्टः = शोभनमन्त्र सन्तुष्टः, सुमन्त्रप्रसन्नः, सुग्रीवरामः शोभनकण्ठश्चासौ राम इतिकर्मधारयः । सर्गंसर्गमिति प्रतिसर्गम् , वीप्सायामव्ययीभावः; प्रतिसृष्टीत्यर्थः । पातु रक्षतु अस्मान् , युष्मान्वेति शेषः । यो रामो न विद्यते प्रतिमा यस्य सोऽप्रतिमः, रावणारिश्चाप्रतिमश्चेति रावणार्यप्रतिमः रावणशत्रुः निरुपमश्चेत्यर्थः, देव्या जानक्या सहित इति शेषः । बिभीषणे रावणानुज आत्माभे स्वाभिन्ने रतोऽनुरक्तोऽस्तीति शेषः । अत्र सीतादि प्रमुखपात्राणि मुद्रालङ्कारेणोपदर्शितानि ॥ १ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

सूत्रधार—सीता को आनन्द देने वाले, लक्ष्मण के सहचर, अच्छे मन्त्रों से सन्तुष्ट, सुकण्ठ से सुशोभित, अपकारी रावण के संहारक, अद्वितीय, बिभीषण के अभिन्नहृदय राम प्रतिसृष्टि में हमलोगों की रक्षा करें ॥ १ ॥

(नेपथ्य की ओर देखकर)

आर्ये ! इधर आओ ।

(प्रविश्य)

नटी—आर्य ! इयमस्मि ।

सूत्रधारः—आर्ये ! इममेवेदानीं शरत्कालमधिकृत्य गीयतां तावत् ।

नटी—आर्य ! तथा ।

(गायति)

सूत्रधारः—अस्मिन् हि काले—

चरति पुलिनेषु हंसी काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा ।

(नेपथ्ये)

आर्य ! आर्य !

विवृति—श्लोक के पूर्व के "अस्मिन् हि काले" पद का अन्वय श्लोक के साथ ही है । के वसतीति कवासिनी काशांशुश्च कवासिनी चेति काशांशुकवासिनी कर्मधारयः । सुसंहृष्टा (सु + सम् + हृष् + क्त), विज्ञातम् (वि + ज्ञा + क्त), नरेन्द्रस्य भवनम् तस्मिन् नरेन्द्रभवने । प्रतिहारं रक्षतीति प्रतिहाररक्षी = द्वारपालिका ।

अन्वयः—चरतीति । (अस्मिन् हि काले) काशांशुकवासिनी सुसंहृष्टा हंसी पुलिनेषु चरति । नरेन्द्रभवने त्वरिता मुदिता प्रतिहाररक्षी इव ॥ २ ॥

व्याख्या—अस्मिन्काले = शरत्समये, काशांशुः—काशपुष्पोज्ज्वला कवासिनी = जलनिवासिनी । सुसंहृष्टा = अतिमुदिता सती । हंसी = वरटा । पुलिनेषु = नद्या वालुकामयेषु प्रदेशेषु, चरति स्वच्छन्दं विहरतीत्यर्थः । एतेनाभिनये प्रवृत्तानां नाटकीयपात्राणाञ्च परिभ्रमणं व्यज्यते । तदेवाभिलक्ष्य नटी "आर्य ! आर्य !" इति वदति । आकर्ण्य च तच्छब्दं सूत्रधारः प्रतिवदति "भवतु विज्ञातम्" इति । ततश्च श्लोकार्धं पठति—नरेन्द्रस्य भवने = गृहे, मुदिता = प्रसन्ना, त्वरिता = कृतत्वरा, प्रतिहाररक्षी = प्रतीहारी श्वेताम्बरं परिदधानेतस्ततो भ्रमति । हंस्याः प्रतीहार्य्याश्च सादृश्याद् अत्रोपमालङ्कारः ॥ २ ॥

(आकर्ण्य)

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम्—

मुदिता नरेन्द्रभवने त्वरिता प्रतिहाररक्षीव ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तौ)



(प्रविश्य)

प्रतिहारी—(विलोक्य) क इह काञ्चुकीयानां सन्निहितः ?

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—भवति ! अयमस्मि किं क्रियताम् ?

हिन्दी रूपान्तर—

(प्रवेश करके)

नटी—आर्य ! मैं उपस्थित हूँ ।

सूत्रधार—आर्ये ! इस समय इसी शरद् ऋतु को लक्ष्य कर गाओ तो ।

नटी—अच्छा, जो आज्ञा ।

(गाती है)

सूत्रधार—इस समय तो काश पुष्प के समान उज्ज्वल, जल में रहने वाली, सुप्रसन्न हंसी नदी तट पर विहार कर रही है ।

(नेपथ्य में)

आर्य ! आर्य !

(सुन कर)

सूत्रधार—अच्छा ! ज्ञात हुआ ।

जिस प्रकार राजभवन में प्रसन्न रहने वाली प्रतीहारी भ्रमण करती रहती है ।

(दोनों जाते हैं)

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—(देख कर) कौन, कञ्चुकी यहाँ उपस्थित है ?

कञ्चुकी—(प्रवेश करके) आर्ये ! मैं हूँ । क्या कार्य है ?

प्रतीहारी—आर्य ! महाराजो देवासुरसंग्रामेष्वप्रतिहतमहारथो दशरथ आज्ञापयति, शीघ्रं भर्तृदारकस्य रामस्य राज्य-प्रभावसंयोगकारका अभिषेकसम्भारा आनीयन्ता-मिति ।

काञ्चुकीयः–यदाज्ञापयति महाराजस्तत्सर्वं संकल्पितम् ।

प्रतीहारी— यद्येवं शोभनं कृतम् ।

काञ्चुकीयः–हन्त भोः !

इदानीं भूमिपालेन कृतकृत्याः कृताः प्रजाः ।
रामाभिधानं मेदिन्यां शशाङ्कमभिषिञ्चता ॥ ३ ॥ ६६

प्रतीहारी— त्वरतां त्वरतामिदानीमार्यः ।

विवृति—सन्निहितः = समीपस्थितः । देवाश्चासुराश्च देवासुराः तेषां संग्रामाः तेषु, तत्पुरुष । अप्रतिहता महान्तः रथाः यस्य सोऽप्रतिहत-महारथः = जिसके रथ की अबाध गति है । राज्यस्य प्रभावः तस्य संयोगं कुर्वन्ति इति राज्यप्रभावसंयोगकारकाः, राज्यप्रभाव सूचित करने वाले । आनीयन्ताम् (आ + नी + यक् + लोट् इति कर्मणि लकारः) । कृतम् (कृ + क्त) ।

कृतकृत्याः = सफल । अभिधानम् = नाम । मेदिन्याम् = भूमि पर । शशाङ्कम् = चन्द्र । अभिषिञ्चता (अभि + षिच् + शतृ + टा) ।

अन्वयः—इदानीम् रामाभिधानं शशाङ्कम् मेदिन्याम् अभिषिञ्चता भूमिपालेन प्रजाः कृतकृत्याः कृताः ॥ ३ ॥

व्याख्या—इदानीम् = साम्प्रतम्, रामाभिधानम् = रामनामकम्, शशाङ्कम् = चन्द्रम्, शैत्यपावनत्वादिभिः साम्यम्, मेदिन्याम् = भूमौ, अभिषिञ्चता = अभिषेकं कुर्वता, यौवराज्ये स्थापयता, भूमिपालेन = राज्ञा, प्रजाः = प्रकृतयः, कृतकृत्याः = कृतार्थाः कृताः = विहिताः । रामराज्याभिषेकः प्रजानां प्रकामम् अभिमत इत्यर्थः ॥ ३ ॥

काञ्चुकीयः-भवति ! इदानीं त्वर्यते।

(निष्क्रान्तः)

प्रतीहारी— (परिक्रम्यावलोक्य) आर्य ! सम्भवक ! सम्भवक ! गच्छ। त्वमपि महाराजवचनेनार्यपुरोहितं यथोपचारेण त्वरय। (अन्यतोगत्वा) सारसिके ! सारसिके ! संगीतशालां गत्वा नाटकीयानां विज्ञापय—कालसंवादिना नाटकेन सज्जा भवतेति, यावदहमपि सर्वं कृतमिति महाराजाय निवेदयामि।

(निष्क्रान्ता)

हिन्दी रूपान्तर—

प्रतीहारी—आर्य ! देवासुरसंग्राम में विजय प्राप्त करने वाले महारथी महाराज दशरथ का आदेश है, कि शीघ्र ही राजकुमार रामचन्द्र के राज्यानुकूल प्रभाव को व्यक्त करने वाले राज्याभिषेक का आयोजन किया जाय।

कञ्चुकी— महाराज की आज्ञा के अनुसार सब कुछ सम्पन्न है।

प्रतीहारी—यदि ऐसी बात है तो अति उत्तम है।

कञ्चुकी— अहो ! हर्ष की बात है।

इस समय राम नामक चन्द्र को धरातल पर अभिषिक्त करके महाराज ने प्रजाओं को कृतार्थ कर दिया ॥ ३ ॥

प्रतीहारी—आप शीघ्रता कीजिये।

कञ्चुकी— आर्ये ! इस समय शीघ्रता ही कर रहा हूँ ! (जाता है)

प्रतीहारी—(घूमकर और देखकर) आर्य सम्भवक ! सम्भवक ! जाओ। तुम भी महाराज के आदेशानुसार माननीय पुरोहित जी से सम्मानपूर्वक शीघ्रता से कार्य कराओ, और संगीतशाला में जाकर नाटकीय पात्रों को सूचित कर दो कि वे सामयिक अभिनय के लिए सन्नद्ध हो जायँ। तब तक मैं भी महाराज को सूचना दे दूँ कि सब कुछ तैयार है। (प्रस्थान)

(ततः प्रविशत्यवदातिका वल्कलं गृहीत्वा)

अवदातिका—अहो ! अत्याहितम्, परिहासेनापीमं वल्कलम् उपनयन्त्या ममैतावद्भयमासीत् किं पुनर्लोभेन परधनं हरतः। हसितुमिवेच्छामि। परं न खल्वेकाकिन्या हसितव्यम्।

(ततः प्रविशति सीता सपरिवारा)

सीता—हञ्जे ! अवदातिका परिशङ्कितवर्णेव लक्ष्यते। किन्तु खल्विवैतत्।

चेटी—भट्टिनि ! सुलभापराधः परिजनो नाम। अपराद्धा भविष्यति।

सीता—नहि, नहि ! हसितुमिवेच्छति।

विवृति—(अति + आहितम्) अत्याहितम् = महाभय। परिहासेनापीमम् (परिहासेन + अपि + इमम्), उपनयन्त्या (उप + नी + शतृ + ङीप् + टा), परिशङ्कितो वर्णो यस्याः सा परिशङ्कितवर्णा। सुलभोऽपराधो यस्य सः।

हिन्दी रूपान्तर—

(तदनन्तर वल्कल लेकर अवदातिका का प्रवेश)

अवदातिका—अरे ! बड़ा अनर्थ हुआ। विनोद में भी इस वल्कल को लेने पर मुझे इतना भय है, तो लोभ से दूसरे का धन चुराने से क्या होगा ? हँसने की इच्छा हो रही है, किन्तु अकेले नहीं हँसना चाहिए।

(पुनः परिवार सहित सीता का प्रवेश)

सीता—सखि ! अवदातिका भयभीत सी दिखाई पड़ती है। क्या बात है ?

चेटी—महारानी ! नौकरों से अपराध हो ही जाता है। कुछ अपराध हुआ होगा।

सीता—नहीं नहीं, वह तो हँसना सा चाहती है।

अवदातिका—(उपसृत्य) जयतु भट्टिनी, न खल्वहमपराद्धा ।

सीता—का त्वां पृच्छति ? अवदातिके ! किमेतत् वामहस्त-परिगृहीतम् ?

अवदातिका—भट्टिनि ! इदं वल्कलम् ।

सीता—वल्कलं कस्मादानीतम् ?

अवदातिका—शृणोतु भट्टिनी ! नेपथ्यपालिन्यार्यरेवा निर्वृत्तरङ्ग-प्रयोजनम् अशोकवृक्षस्यैकं किसलयमस्माभिर्याचितासीत् । न च तया दत्तम् । ततोऽर्हत्यपराध इतीदं गृहीतम् ।

सीता—पापकं कृतम् ! गच्छ, निर्यातय ।

विवृति—खल्वहमपराद्धा (खलु + अहम् + अपराद्धा), वामेन हस्तेन परिगृहीतम्—(परि + ग्रह + क्त), आनीतम् = (आ + नी + क्त) लाया हुआ ।

नेपथ्यपालिनी = नेपथ्य की रक्षा करने वाली, निर्वृत्तं रङ्गस्य प्रयोजनं येन तत् निर्वृत्तरङ्गप्रयोजनम् । याचिता = (याच् + क्त) माँगा ।

हिन्दी रूपान्तर—

अवदातिका—(पास जाकर) महारानी की जय हो । मैंने कोई अपराध नहीं किया ।

सीता—तुमसे कौन पूछता है ? अवदातिके ! यह तुम्हारे बायें हाथ में क्या है ?

अवदातिका—महारानीजी ! यह वल्कल हैं ।

सीता—इसे कहाँ से ले आई ?

अवदातिका—महारानीजी ! सुनिये । मैंने नाटक-मंच के सम्पन्न होने पर मंच की रक्षा करने वाली आर्या रेवा से अशोक वृक्ष का एक पल्लव माँगा था, किन्तु उसने न दिया । तब अपराध होना ही था, इसलिए इसे ले आयी हूँ ।

सीता—पाप किया है । जाओ, लौटा दो ।

अवदातिका—भट्टिनि ! परिहासनिमित्तं मयैतदानीतम् ।
सीता—उन्मत्तिके ! एवं दोषो वर्धते । गच्छ, निर्यातय, निर्यातय ।
अवदातिका—यद् भट्टिन्याज्ञापयति ।

(प्रस्थातुमिच्छति)

सीता—हला ! एहि तावत् ।
अवदातिका—भट्टिनि ! इयमस्मि ।
सीता—किन्तु खलु ममापि शोभते ?
अवदातिका—भट्टिनि ! सर्वशोभनीयं सुरूपं नाम । अलंकरोतु भट्टिनी ।
सीता—आनय तावत् । (गृहीत्वा, अलंकृत्य) हला ! पश्य, किमिदानीं शोभते ?

हिन्दी रूपान्तर—
अवदातिका—महारानीजी ! मैं परिहास के लिए ही इसे ले आई हूँ ।
सीता—पगली, इस प्रकार तो दोष बढ़ता ही है । जाओ, लौटा दो, लौटा दो ।
अवदातिका—जो महारानीजी की आज्ञा ।

(जाना चाहती है)

सीता—अरी ! आओ तो ।
अवदातिका—महारानीजी ! मैं उपस्थित हूँ ।
सीता—क्या मुझे भी यह शोभा देता है ?
अवदातिका—महारानीजी ! सुन्दर रूप पर सब अच्छा लगता है । आप पहिन कर देखिये ।
सीता—लाओ तो । (लेकर और पहिन कर) अरी देख तो, क्या इस समय यह अच्छा लगता है ?

अवदातिका—तव खलु शोभते नाम। सौवर्णिकमिव वल्कलं संवृत्तम्।

सीता—हञ्जे ! त्वं किञ्चिन्न भणसि !

चेटी—नास्ति वाचा प्रयोजनम्। इमानि प्रहृषितानि तनूरुहाणि मन्त्रयन्ते।

सीता—हञ्जे ! आदर्शं तावदानय।

चेटी—यद् भट्टिन्याज्ञापयति। (निष्क्रम्य, प्रविश्य) भट्टिनि ! अयमादर्शः।

सीता—(चेटीमुखमवलोक्य) तिष्ठतु तावदादर्शः। त्वम् किमपि वक्तुकामेव।

विवृति—सौवर्णिकम् = (सुवर्ण + ठक्) सुनहला। संवृत्तम् = (सम् + वृत् + क्त) सम्पन्न हुआ। तनूरुहाणि = रोंगटे। आदर्शम् = दर्पण। वक्तुं कामयत इति वक्तुकामा। श्रुतम् (श्रु + क्त)।

हिन्दी रूपान्तर—

अवदातिका—आपको तो अच्छा लगता ही है। यह तो सुवर्ण का सा बन गया है।

सीता—सखि ! तुम कुछ नहीं बोलती हो ?

चेटी—बोलने का क्या प्रयोजन ? ये खड़े हुए रोम ही कह रहे हैं।

सीता—सखि ! दर्पण तो लाओ।

चेटी—जो आपकी आज्ञा। (निकल कर फिर प्रवेश करके) महारानीजी, यह दर्पण लीजिये।

सीता—(चेटी का मुख देखकर) दर्पण रहने दो। तुम कुछ कहना चाहती हो।

चेटी—भट्टिनि ! एवं मया श्रुतम् , आर्यबालाकिः कञ्चुकी भणति अभिषेकोऽभिषेक इति ।
सीता—कोऽपि भर्ता राज्ये भविष्यति ।
चेटी—भट्टिनि ! प्रियाख्यानिकं प्रियाख्यानिकम् ।
सीता—किं किं प्रतीष्य मन्त्रयसे ।
चेटी—भर्तृदारकः किलाभिषिच्यते ।
सीता—यद्येवं द्वितीयं मे प्रियं श्रुतम् , विशालतरमुत्सङ्गं कुरु ।
चेटी—भट्टिनि ! तथा । (तथा करोति)
सीता—(आभरणानि अवमुच्य ददाति)
चेटी—भट्टिनि ! पटहशब्द इव श्रूयते ।

विवृति—भर्ता = (भृ + तृच्) स्वामी, आख्यानिकम् = संवाद, प्रतीष्य = (प्रति + इष् + ल्यप्) विचार कर, अभिषिच्यते इत्यत्र कर्मणि लकारः । उत्सङ्गम् = क्रोड, आभरणानि = आभूषण, अवमुच्य (अव + मुच् + ल्यप्),

हिन्दी रूपान्तर—

चेटी—महारानीजी ! मैंने सुना है—आर्य बालाकि कह रहे थे "अभिषेक है, अभिषेक है ।"
सीता—कोई राज्य में राजा होगा ।
चेटी—महारानीजी ! प्रिय संवाद है, प्रिय संवाद है ।
सीता—क्या, क्या मन में रखकर बोलती हो ।
चेटी—राजकुमार का अभिषेक होगा ।
सीता—यदि ऐसी बात है तो मैंने दूसरा प्रिय सुना है । अपना कञ्चुक फैलाओ ।
चेटी—महारानीजी ! एवमस्तु । (वैसा ही करती है) ।
सीता—(आभूषण उतार कर देती है) ।
चेटी—महारानीजी ! बाजे का सा शब्द सुनाई देता है ।

सीता—स एव।

चेटी— एकपदेऽवघट्टिततूष्णीकः पटहशब्दः संवृत्तः।

सीता—को नु खल्वुद्घातोऽभिषेकस्य ? अथवा बहुवृत्तान्तानि राजकुलानि नाम।

चेटी— भट्टिनि ! एवम् मया श्रुतम् — भर्तृदारकमभिषिच्य महाराजो वनं गमिष्यति।

सीता—यद्येवं न तदभिषेकोदकं मुखोदकं नाम।

(ततः प्रविशति रामः)

रामः— यावदिदानीं मैथिलीं पश्यामि।

अवदातिका—भट्टिनि ! भर्तृदारकः खल्वागच्छति। नापनीतं वल्कलम्।

विवृति—एकपदे = तुरन्त, अवघट्टिततूष्णीकः = शान्त, उद्घातः = उपद्रव, इदानीम् = इस समय, अपनीतम् (अप + नी + क्त) हटाया हुआ।

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—हाँ, वही है।

चेटी—एकाएक वाद्यशब्द शान्त हो गया।

सीता—अभिषेक में यह कैसा विघ्न आ गया। अथवा राजकुल में अनेक वृत्तान्त होते रहते हैं।

चेटी—महारानीजी ! मैंने ऐसा सुना है कि महाराज राजकुमार का अभिषेक करके वन चले जायँगे।

सीता—यदि ऐसा हुआ तो यह अभिषेकजल नहीं, वरन्, आँसू धोने का जल है।

(तदनन्तर राम का प्रवेश)

राम—तब तक सीता की प्रतीक्षा करूँ।

अवदातिका—महारानीजी ! राजकुमार आ रहे हैं। आप ने वल्कल हटाया नहीं।

रामः— (विलोक्य) मैथिलि ! किमास्यते ।
सीता— (उत्थाय) हम् आर्यपुत्रः ! जयत्वार्यपुत्रः ।
रामः— मैथिलि ! आस्यताम् (उपविशति) ।
सीता— यदार्यपुत्र आज्ञापयति (उपविशति) आर्यपुत्र ! इयं दारिका भणति "अभिषेकोऽभिषेक" इति ।
रामः— अवगच्छामि ते कौतूहलम् । अस्त्यभिषेकः । मैथिलि ! किमर्थं विमुक्तालङ्कारासि ?
सीता— न खलु तावद्बध्नामि ।
रामः— न खलु, प्रत्यग्रावतारितैर्भूषणैर्भवितव्यम् ।
सीता— पारयत्यार्यपुत्रोऽलीकमपि सत्यमिव मन्त्रयितुम् ।

विवृति—आस्यते (कर्मणि लकारः) बैठी हो। दारिका=लड़की । विमुक्ताः अलङ्काराः यया सा विमुक्तालङ्कारा, बहुव्रीहिः । प्रत्यग्रम् अवतारितानि तैः प्रत्यग्रावतारितैः=तुरन्त उतारे हुए। अलीकम्=मिथ्या। मन्त्रयितुम् (मन्त्+णिच्+तुमुन्) ।

हिन्दी रूपान्तर—

राम—(देख कर) मैथिलि ! क्यों बैठी हो ?
सीता—(उठकर) अरे ! आर्यपुत्र ! आर्यपुत्र की जय हो ।
राम—सीता, बैठो (स्वयं बैठते हैं) ।
सीता—आर्यपुत्र की जैसी आज्ञा (बैठ कर) आर्यपुत्र ! यह लड़की "अभिषेक अभिषेक" कह रही है ।
राम—मैं तुम्हारी उत्सुकता समझता हूँ। हाँ अभिषेक है। सीता ! तुमने आभूषण क्यों उतार दिये ?
सीता—मैं नहीं पहनती हूँ ।
राम—नहीं, आभूषण अभी के उतारे हुए हैं ।
सीता—आर्यपुत्र मिथ्या को भी सत्य सिद्ध कर सकते हैं ।

रामः— तेन हि अलङ्क्रियताम् ! अहमादर्शं धारयिष्ये । (निर्वर्ण्य) मैथिलि ! तिष्ठ । किमिदम् ? इक्ष्वाकूणां वृद्धालंकारस्त्वया धार्यते । अस्त्यस्माकं प्रीतिः । आनय ।

सीता— मा खलु आर्यपुत्रोऽमङ्गलं भणतु ।

रामः— मैथिलि ! किमर्थं वारयसि ?

सीता— उज्झिताभिषेकस्यार्यपुत्रस्यामङ्गलमिव मे प्रतिभाति ।

रामः— मा स्वयं मन्युमुत्पाद्य परिहासे विशेषतः ।
शरीरार्धेन मे पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया ॥ ४ ॥

विवृति—अलङ्क्रियताम् = आभूष्यताम् = भूषण धारण करो । निर्वर्ण्य = (निर + वर्ण + ल्यप्) ध्यान से देखकर, अस्त्यस्माकम् (अस्ति + अस्माकम्) । उज्झिताभिषेकस्य, उज्झितः अभिषेको येन सः तस्य । मन्युम् = दुःख । आबद्धा (आ + बन्ध् + क्त) ।

अन्वयः—विशेषतः परिहासे स्वयम् मन्युम् मा उत्पाद्य । हि यदा मे शरीरार्धेन त्वया पूर्वमाबद्धा ॥ ४ ॥

व्याख्या—विशेषतः = विशेषरूपेण, परिहासे = हास्यविषये, स्वयम् = आत्मनैव, मन्युम् = दुःखम्, मा उत्पाद्य = अलं विधाय । परिहासेऽमङ्गलस्य चिन्ता न कार्येत्यर्थः । हि = यतः यदा, मे = मम, शरीरार्धेन = शरीरार्धस्वरूपेण पत्नीरूपेणेत्यर्थः । त्वया पूर्वं मद्धारणात् प्रागेव धृता = परिगृहीता । त्वद् धारणात् मयैव धृतमित्यर्थः ॥ २ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

राम—अच्छा तो अलंकार धारण कर लो । मैं दर्पण लेता हूँ । (देखकर) सीता, ठहरो । यह क्या है ? तुम इक्ष्वाकुवंश के वृद्धावस्था के अलंकार धारण कर रही हो । हमारी भी इसमें रुचि है । लाओ ।

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—परित्रायतां परित्रायतां कुमारः।

रामः—आर्य ! कः परित्रातव्यः ?

काञ्चुकीयः—महाराजः।

रामः—महाराज इति। ननु वक्तव्यम् एकशरीरसंक्षिप्ता पृथिवी रक्षितव्या। अथ कुत उत्पन्नोऽयं दोषः।

काञ्चुकीयः—स्वजनात्।

रामः—स्वजनादिति। हन्त ! नास्ति प्रतीकारः।

शरीरेऽरिः प्रहरति हृदये स्वजनस्तथा।
कस्य स्वजनशब्दो मे लज्जामुत्पादयिष्यति॥ ५॥

विवृति—परित्रातव्यः (परि + त्रै + तव्य) रक्षणीयः। वक्तव्यम् (वच् + तव्य), एकस्मिन् शरीरे संक्षिप्ता एकशरीरसंक्षिप्ता = एक शरीर पर आधारित, रक्षितव्या (रक्ष् + तव्य + टाप्), कुत उत्पन्नोऽयम्, (कुतः + उत्पन्नः + अयम्), प्रतीकारः = उपाय, छुटकारा। स्वजन इति शब्दः स्वजनशब्दः।

अन्वयः—अरिः शरीरे तथा स्वजनः हृदये प्रहरति। कस्य स्वजनशब्दः मे लज्जाम् उत्पादयिष्यति॥ ५॥

व्याख्या—अरिः = शत्रुः, शरीरे = देहे, स्वजनस्तु विश्वस्तः सन् हृदये प्रहरति। महान्तं व्याधिं जनयति मर्मज्ञत्वात्। कस्य कृते प्रयुज्यमानः स्वजन-शब्दो मे = मम, लज्जाम् = ह्रियम् उत्पादयिष्यति। कोऽसौ जनः येन ममाहितं कृतम् ?॥ ५॥

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—आप मुख से अमंगल न निकालिये।

राम—सीता क्यों रोक रही हो ?

सीता—अभिषेक का परित्याग करने वाले आपका अमंगल-सा प्रतीत होता है।

काञ्चुकीयः—कैकेय्याः।
रामः—किमम्बायाः ? तेन हि उदर्केण गुणेनात्र भवितव्यम्।
काञ्चुकीयः—कथमिव।
रामः—श्रूयताम्—

यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या।
फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति ॥ ६ ॥

विवृति—उदर्केण = उन्नत, भवितव्यम् = (भू + तव्य) होना चाहिये, शक्रेण समः शक्रसमः = इन्द्रतुल्य, पुत्रवती (पुत्रोऽस्त्यस्याः सा), स्पृहा = इच्छा, न कार्यमित्यकार्यम् = अकरणीय।

अन्वयः—यस्या भर्ता शक्रसमः, या च मया पुत्रवती तस्याः कस्मिन् फले स्पृहा येन (सा) अकार्यं करिष्यति ॥ ६ ॥

व्याख्या—यस्याः = अम्बायाः, भर्ता = पतिः, शक्रसमः = इन्द्रसदृशः, या च मया = रामेण, पुत्रवती = सुतिनी, तस्याः सत्पतिकायाः सत्पुत्रवत्याः अम्बायाः कस्मिन् फले स्पृहा = अभिलाषा, येन हेतुना अकार्यम् = अकर्तव्यं करिष्यति ॥ ६ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

राम—स्वयं अमंगल की आशंका नहीं करनी चाहिये, विशेषकर परिहास में; क्योंकि मेरी अर्धाङ्गिनी होकर तुमने पहिले ही वल्कल को धारण कर लिया है ॥ ४ ॥

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—कुमार ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।
राम—आर्य, किसकी रक्षा करनी है।
कञ्चुकी—महाराज की।
राम—तो ऐसा कहिये कि एक शरीर पर आश्रित पृथ्वी की रक्षा करनी है। अच्छा, कैसे यह दोष उत्पन्न हुआ ?

काञ्चुकीयः—कुमार ! अलमुपहतासु स्त्रीबुद्धिषु स्वमार्जवमुपनिक्षेप्तुम्। तस्या एव खलु वचनाद् भवदभिषेको निवृत्तः।

रामः—आर्य ! गुणाः खल्वत्र।

काञ्चुकीयः—कथमिव ?

उपहतासु (उप + हन् + क्त + टाप्) नष्ट, आर्जवम् = सरलता, उपनिक्षेप्तुम् (उप + नि + क्षिप् + तुमुन्), निवृत्तः = (नि + वृत् + क्त) रोका गया।

हिन्दी-रूपान्तर—

कञ्चुकी—आत्मीयजन से।

राम—आत्मीयजन से तो प्रतीकार नहीं है।

शत्रु तो शरीर पर प्रहार करता है, पर आत्मीयजन हृदय पर आघात करते हैं। किसके लिए प्रस्तुत होने वाला स्वजन शब्द मुझे लज्जित करेगा ?

कञ्चुकी—कैकेयी से।

राम—कैकेयी से ! तो कोई महान् लाभ होगा।

कञ्चुकी—कैसे ?

राम—सुनिये—

जिसके इन्द्रतुल्य पति हैं, जो मुझ सरीखे पुत्र से पुत्रवती है, उसकी किस फल में इच्छा हो सकती है, जिससे इस प्रकार कुकृत्य करेगी ? ॥ ६ ॥

कञ्चुकी—कुमार ! नारी की विनष्ट बुद्धि पर अपनी सरलता का आरोपण न कीजिये। उन्हीं के शब्दों से आपका अभिषेक रुका है।

राम—आर्य ! इसमें बहुत गुण है।

कञ्चुकी—किस प्रकार ?

रामः—श्रूयताम्—

वनगमननिवृत्तिः पार्थिवस्यैव ताव-
न्मम पितृपरवत्ता बालभावः स एव ॥
नवनृपतिविमर्शे नास्ति शङ्का प्रजाना-
मथ च न परिभोगैर्वञ्चिता भ्रातरो मे ॥ ७ ॥

विवृति—वनगमनान्निवृत्तिः = वन जाने में रुकावट । पितुः परवत्ता पितृपरवत्ता = पिता की पराधीनता, नवस्य नृपतेः विमर्शः तस्मिन् नवनृपतिविमर्शे = नये राजा के विचार में । वञ्चिताः = रहित, ठगे हुए ।

अन्वयः—तावत् पार्थिवस्य एव वनगमननिवृत्तिः, मम पितृपरवत्ता, स एव बालभावः, नवनृपतिविमर्शे प्रजानां शङ्का नास्ति । अथ च मे भ्रातरः परिभोगैः न वञ्चिताः ॥ ७ ॥

व्याख्या—तावत् पार्थिवस्यैव = राज्ञ एव वनगमनात् निवृत्तिः इत्येको गुणः, मम रामस्य पितुः परवत्ता = पराधीनतेति द्वितीयो गुणः, स एव प्राक्तन एव बालभावः = शैशवम् इति तृतीयो गुणः, प्रजानाम् प्रकृतीनां नवस्य नृपतेः राज्ञो विमर्शे विचारे शंका, कथं भूतोऽयम् राजा स्यादिति भावः, नास्तीति चतुर्थो गुणः, अथ चैतदनन्तरं मे = मम भ्रातरः भरतादयः परिभोगैः = राज्यसुखोपभोगैर्न वञ्चिता न रहिता इति पञ्चमो गुणः । एवं मातुर्वचनात् बहुभिरेव गुणैर्भूयते ॥ ७ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

राम—सुनिये—

राजा का वन जाने से रुकना, पिता के कारण मेरी पराधीनता, मेरा पहले का वही बचपन, नये राजा किस प्रकार के होंगे प्रजा की यह शंका नहीं है। साथ ही मेरे भाई राजसुख से वञ्चित नहीं हुए। (ये सभी गुण माता के कारण ही सिद्ध हुए) ॥ ७ ॥

काञ्चुकीयः—अथ च तयानाहूतोपसृतया भरतोऽभिषिच्यतां राज्य इत्युक्तम् । अत्राप्यलोभः ?

रामः— भवान् खल्वस्मत्पक्षपातादेव नार्थमवेक्षते ।

काञ्चुकीय :—अथ…………

रामः— अतः परं न मातुः परिवादं श्रोतुमिच्छामि । महाराजस्य वृत्तान्तस्तावदभिधीयताम् ।

काञ्चुकीयः—ततस्तदानीम्—

शोकादवचनाद् राज्ञा हस्तेनैव विसर्जितः ।
कमप्यभिमतं मन्ये मोहं च नृपतिर्गतः ॥ ८ ॥

विवृति—अनाहूतोपसृतया अनाहूता चोपसृतानाहूतोपसृता तया = बिना बुलाये ही उपस्थित, नार्थमवेक्षते = वास्तविकता नहीं समझते ।

अन्वयः—राज्ञा शोकात् अवचनात् हस्तेनैव विसर्जितः । मन्ये नृपतिः कमपि अभिमतं मोहं गतः ।

व्याख्या—राज्ञा = महाराजेन दशरथेन, शोकात् = महादुःखात्, अवचनात् = मौनभूतत्वात्, हस्तेन एव = करसंकेतेनैव अहं विसर्जितः प्रेषितः । मन्ये = विचारयामि, नृपतिः = दशरथः, कमपि अभिमतम् = अभीष्टं, मोहं गतः = प्राप्तः । प्रतिबोधापेक्षया मोह एव तत् कृतेऽभिलषित आसीत् ॥ ८ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

कञ्चुकी—बिना बुलाये ही पहुँच कर उन्होंने "भरत का ही राज्याभिषेक किया जाय" कहा । क्या इसमें भी निर्लोभ है ?

राम—आप तो मेरे पक्षपात के ही कारण वास्तविकता की ओर ध्यान नहीं देते ।

कञ्चुकी—और भी……

राम—मैं अधिक माता की निन्दा नहीं सुनना चाहता । महाराज का वृत्तान्त तो कहिये ।

रामः—कथं मोहं गतः ?

(ततः प्रविशति लक्ष्मणः)

लक्ष्मणः—(सक्रोधम्) कथंकथं मोहमुपगत इति ।

यदि न सहसे राज्ञो मोहं धनुः स्पृश, मा दया
स्वजननिभृतः सर्वोऽप्येवं मृदुः परिभूयते ।
अथ न रुचितं मुञ्च त्वं मामहं कृतनिश्चयो
युवतिरहितं लोकं कर्तुं यतश्छलिता वयम् ॥९॥

विवृति—मोहमुपगतः (उप + गम् + क्त) मोह को प्राप्त हुए, मूर्छित हो गये । स्वजने निभृतः स्वजननिभृतः = (अपकार करने पर भी) आत्मीय जन पर निर्भर रहने वाले, रुचितम् = (रुच् + क्त) अच्छा लगा । कृतो निश्चयो येन सः । युवतिभी रहितं युवतिरहितम् । छलिताः = ठगे गये ॥ ९ ॥

अन्वयः—(यदीति) यदि राज्ञः मोहं न सहसे धनुः स्पृश, मा दया, स्वजननिभृतः सर्वोऽपि मृदुः एवं परिभूयते । अथ न रुचितम् (तर्हि) त्वम् माम् मुञ्च, अहं लोकम् युवतिरहितम् कर्तुं कृत-निश्चयः यतः वयम् छलिताः ।

व्याख्या—यद्यप्यपकारे कृतेऽपि राज्ञः = महाराजस्य मोहं = मूर्छां न सहसे = न मर्षयसि । धनुः = शरासनं स्पृश = गृहाण, मा दया विधेया । स्वजननिभृतः = आत्मापकारिस्वजनतुष्टः, मृदुः = कोमलस्वभावः सर्वः अपि जनः परिभूयते = तिरस्क्रियते । अथ इत्थं जातेऽपि न रुचितम् = अभि-लषितम् तर्हि मां मुञ्च = स्वच्छन्दं कुरु । अहं लोकम् = संसारं युवति-रहितम् = नारीविहीनं कर्तुं कृतनिश्चयः दृढसंकल्पोऽस्मि, यतः नार्या वयं छलिताः = वञ्चिताः ॥ ९ ॥

कञ्चुकी—फिर तो उस समय महाराज ने शोक के कारण मौन होने से हाथ के संकेत से मुझे भेजा है । मैं सोचता हूँ कि महाराज अभीष्ट मोह (मूर्छा) को प्राप्त हुए अर्थात् उन्हें मूर्छा ही अच्छी लगी ।

रामः—क्या मोह को प्राप्त हो गये ? ॥ ८ ॥

रामः— सुमित्रामातः ! किमिदम् ?

लक्ष्मणः—कथं किमिदं नाम ?

क्रमप्राप्ते हृते राज्ये भुवि शोच्यासने नृपे ।
इदानीमपि सन्देहः किं क्षमा निर्मनस्विता ॥१०॥

विवृति—क्रमप्राप्ते-क्रमेण प्राप्ते = वंशपरम्परा से प्राप्त, शोच्यम् आसनं यस्य सः । इदानीम् = इस समय, निर्मनस्विता = आत्मसम्मान को नष्ट करना ॥ १० ॥

अन्वयः—क्रमप्राप्ते राज्ये हृते नृपे भुवि शोच्यासने (जाते) इदानीमपि सन्देहः ? किं निर्मनस्विता क्षमा ? ॥ १० ॥

व्याख्या—क्रमप्राप्ते = वंशपरम्परागते राज्ये, हृते = अपहृते सति, नृपे = महाराजे, भुवि = भूमौ शोच्यासने दुःखान्विते सति, इदानीमपि सन्देहः = प्रतीकारकरणे शंकावसरः ? किम् निर्मनस्विता = आत्मसम्मानाभावः, क्षमा = सहनशीलत्वम् । मानिभिः सम्मानत्यागो न कार्य इत्यर्थः ॥ १० ॥

हिन्दी रूपान्तर—

(लक्ष्मण का प्रवेश)

लक्ष्मण—(क्रोध सहित) यदि राजा को मूर्छा सह्य न हो तो धनुष उठाइये । दया नहीं करनी चाहिये । जो कोमल स्वभाव वाला अपराध करने पर भी स्वजनों को क्षमा कर दिया करता है, वही तिरस्कृत होता है । यदि फिर भी यह आपको अच्छा न लगता हो तो मुझे निश्चिन्त कर दीजिये । मैंने तो संसार को युवतियों से रहित कर देने का दृढ़ संकल्प किया है, क्योंकि हमलोग उन्हीं से छले गये हैं ॥ ९ ॥

राम—सुमित्रानन्दन ! यह क्या ?

लक्ष्मण—क्यों, क्यों, अब भी यह क्या ?

वंशपरम्परा से प्राप्त राज्य छिन गया । महाराज भूमि पर चिन्तनीय

रामः—सुमित्रामातः ! अस्मद् राज्यभ्रंशो भवतः उद्योगं जनयति ।
भरतो वा भवेद् राजा वयं वा ननु तत्समम् ।
यदि तेऽस्ति धनुः श्लाघा स राजा परिपाल्यताम् ॥ ११ ॥
लक्ष्मणः—न शक्नोमि रोषम् धारयितुम् । भवतु गच्छामस्तावद् ।
रामः—इतस्तावद् भवतः स्थैर्यमुत्पादयता मयैवमभिहितम्-
उच्यतामिदानीम्—

विवृति—अस्माकं राजस्य भ्रंश इत्यस्मद्राज्यभ्रंशः = मेरा राज्य से च्युत होना । श्लाघा = गर्व । रोषम् = क्रोध, अभिहितम् = कहा ।

अन्वयः— भरत इति । भरतः राजा भवेत् वयम् वा, तत्समम् ननु, यदि ते धनुश्लाघा अस्ति स राजा परिपाल्यताम् ॥ ११ ॥

व्याख्या—भरतः = कनिष्ठो भ्राता राजा भवेत् शासकः स्यात्, वयम् वा राजानः स्याम एतद् द्वयमपि समम् तुल्यम् । यदि ते = तव धनुः-श्लाघा धनुषि गर्वः तर्हि आवयोः कोऽपि राजा भवेत् स परिपाल्यताम् = रक्ष्यताम् । त्वया न कदापि विरोधः कर्तव्यः ॥ ११ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

दशा में हैं । क्या अब भी सन्देह है ? क्या कायरता ही क्षमा कही जाती है ? ॥ १० ॥

राम—सुमित्रानन्दन ! क्या हमारा राज्य से च्युत होना ही तुम्हारे उद्योग को बढ़ा रहा है ?

भरत राजा हो या मैं, दोनों बातें समान हैं । यदि तुम्हें धनुष पर गर्व है तो कोई भी राजा हो उसी की रक्षा करनी चाहिए ॥ ११ ॥

लक्ष्मण—मैं क्रोध को नहीं रोक सकता । होगा, मैं चला ।

राम—इधर आओ, तुम्हें शान्त करने के लिये ही मैंने ऐसा कहा । अच्छा, तुम्ही बताओ—

तातें धनुर्हि मयि सत्यमवेक्षमाणे
मुञ्चानि मातरि शरं स्वधनं हरन्त्याम्।
दोषेषु बाह्यमनुजं भरतं हनानि
किं रोषणाय रुचिरं त्रिषु पातकेषु॥ ११ ॥६५

लक्ष्मणः—हा धिक्! अस्मान् अविज्ञायोपालम्भसे।

विवृति—अवेक्षमाणे = अवलोकन करने वाले, शरम् = बाण, बाह्यम् = अलग हुए, अविज्ञाय = न जानकर, उपालम्भसे = उलाहना दे रहे हो।

अन्वयः—मयि सत्यम् अवेक्षमाणे ताते धनुर्हि, स्वधनं हरन्त्याम् मातरि शरं मुञ्चानि। दोषेषु बाह्यम् अनुजं भरतं हनानि। त्रिषु पातकेषु रोषणाय किं रुचिरम्!॥ ११ ॥

व्याख्या—मयि मद्विषये सत्यमवेक्षमाणे प्रतीक्षमाणे ताते धनुःग्राह्यम्। स्वं धनम् = विवाहसमये प्रतिज्ञातम् स्वकीयम् धनम् हरन्त्याम्—आददानायां मातरि कैकेय्यां शरं बाणं मुञ्चानि = पातयानि। दोषेषु = राज्यापहरणादिषु दोषेषु, बाह्यम् = पृथग्भूतं निर्दोषमित्यर्थः। अनुजं कनिष्ठं भ्रातरम् भरतं हनानि व्यापादयानि। एतेषु पूर्वकथितेषु त्रिषु पातकेषु = पापेषु तव रोषणाय क्रोधाय किं रुचिरं शोभनम्। केन पापात्मकेन कार्येण तव क्रोधस्य शान्तिर्भविष्यति?॥ ११ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

क्या सत्य अवलोकन करने वाले पिता पर जो मेरे लिये ही दुःखी हैं—धनुष उठाऊँ? क्या पूर्व प्रतिज्ञात अपने धन को अपनाने वाली माता पर बाण छोड़ दूँ? क्या सर्वथा निर्दोष अपने छोटे भाई भरत को मार दूँ? इन तीन पापों में से क्रोध को दूर करने वाला कौन-सा पाप अच्छा होगा?॥ ११ ॥

लक्ष्मण—अहो धिक्कार है! हमें न जानकर ही आप उलाहना दे रहे हैं।

रामः—मैथिलि !

मंगलार्थेऽनया दत्तान् वल्कलाँस्तावदानय।
करोम्यन्यैर्नृपैर्धर्मं नैवाप्तं नोपपादितम्॥ १२॥

सीता—गृह्णात्वार्यपुत्रः।

रामः—मैथिलि ! किं व्यवसितम्?

सीता—ननु सहधर्मचारिणी खल्वहम्।

रामः—मयैकाकिना किल गन्तव्यम्।

सीता—अतो नु खल्वनुगच्छामि।

विवृति—दत्तान् = (दा+क्त) दिये हुए। नैवाप्तम् (न+एव+आप्तम्) अप्राप्त, उपपादितम् = किये हुए। व्यवसितम् = निश्चित किया। गन्तव्यम् = (गम्+तव्य) जाना चाहिये।

अन्वयः—अनया दत्तान् वल्कलान् मङ्गलार्थे तावद् आनय, अन्यैः नृपैः नैव आप्तम् न उपपादितम् धर्मं करोमि॥ १२॥

व्याख्या—अनया = अवदातिकया, दत्तान् = अर्पितान् वल्कलान्, मंगलार्थे = मंगलमयकार्यकरणाय तावदिति वाक्यालंकारे, आनय = देहि, अन्यैर्नृपैः = राजभिः, नैव आप्तम् = प्राप्तम् न वा उपपादितम् = कृतम् धर्मं सुकर्म करोमि, अस्मद् वनगमनं हितकरमेवेतिभावः॥ १२॥

हिन्दी रूपान्तर—

राम—सीता ! मंगलमय कार्य के लिए अवदातिका द्वारा दिये गये वल्कल को लाओ। जिस धर्म को दूसरे राजाओं ने न प्राप्त किया, न अर्जित किया, उसे मैं कर रहा हूँ॥ १२॥

सीता—आर्यपुत्र ! लीजिये।

राम—सीता ! तुमने क्या निश्चय किया?

सीता—मैं तो आपकी अर्धाङ्गिनी हूँ।

राम—मैं अकेला ही जाऊँगा।

सीता—इसलिए तो मैं पीछे चलूँगी।

रामः—लक्ष्मण ! वार्यतामियम् ।

लक्ष्मणः—आर्य ! नोत्सहे श्लाघनीये काले वारयितुमत्रभवतीम् । कुतः—

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च ।
त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः ॥ १३ ॥

विवृति—नोत्सहे = समर्थ नहीं हूँ, श्लाघनीयः = प्रशंसनीय, शशः अङ्के यस्य स शशाङ्कः = चन्द्र, राहुदोषे = ग्रहण लगने पर, करेणुः = हस्तिनी, पङ्के लग्नम् पङ्कलग्नम् = कीचड़ में फँसे, भर्ता नाथो यासां ताः भर्तृनाथाः = पतिपरायणाः ॥ १३ ॥

अन्वयः—तारा राहुदोषेऽपि शशाङ्कम् अनुचरति, लता च वनवृक्षे पतति (सति) भूमिं याति । करेणुः पङ्कलग्नम् गजेन्द्रं न त्यजति । हि नार्यः भर्तृनाथाः । अतः आर्या व्रजतु धर्मं चरतु ॥ १३ ॥

व्याख्या—तारा राहुदोषे अपि = राहुकृतोपरागेऽपि, शशाङ्कम् = चन्द्रं, अनुचरति = अनुगच्छति । लता च = वल्ली च । वनवृक्षे = काननतरौ पतति निपतति सति, भूमिं = पृथ्वीं याति स्वयं च पतति । करेणुः = हस्तिनी, पंकलग्नं = कर्दमनिमग्नम्, गजेन्द्रं = करिराजं न त्यजति । इयमपि यातु धर्मं चरतु = अनुतिष्ठतु, नार्यः = स्त्रियः, भर्तृनाथाः = पतिव्रताः भवन्ति ॥ १३ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

राम—लक्ष्मण ! इन्हें रोको ।

लक्ष्मण—आर्य ! मैं इस प्रशंसनीय अवसर पर आर्या को रोकने में असमर्थ हूँ । क्योंकि—

तारा रोहिणी ग्रहण लगने पर भी चन्द्र का अनुसरण करती है । लता जंगली वृक्ष के गिरने पर स्वयं भूमि पर गिर जाती है । हस्तिनी कीचड़ में फँसे हुए गजराज को नहीं छोड़ती । अतः आर्या चलें

काञ्चुकीयः—कुमार ! न खलु गन्तव्यम् । एष हि महाराजः

श्रुत्वा ते वनगमनं वधूसहायं
सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रम् ॥

उत्थाय क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः
कान्तारद्विरद इवोपयाति जीर्णः ॥ १४ ॥ 61

विवृति—वधूः सहाया यस्मिन् तत्=जिसमें पत्नी सहायक है, सौभ्रात्रेण व्यवसिता लक्ष्मणस्यानुयात्रा यस्मिन् तत् = सुभ्रातृभाव से लक्ष्मण जिसमें अनुसरण कर रहे हैं। उत्थाय=(उद् + स्था + ल्यप्) उठकर, क्षितितलस्य रेणुभी रूषितानि अङ्गानि यस्य सः=पृथ्वी पर लोटने से जिनके अंग धूसरित हो गये हैं। कान्तारस्य द्विरदः कान्तारद्विरदः=वन्य गज।

अन्वयः—वधूसहायं सौभ्रात्रव्यवसितलक्ष्मणानुयात्रं ते वनगमनं श्रुत्वा क्षितितलरेणुरूषिताङ्गः उत्थाय जीर्णः कान्तारद्विरद इव उपयाति ॥ १४ ॥

व्याख्या—महाराजः वधूसहायम्=नारीद्वितीयम् सौभ्रात्रव्यवसित—लक्ष्मणानुयात्रम्=सुभ्रातृत्वसंकल्पितलक्ष्मणानुगमनम्, ते=तव वन-गमनम् श्रुत्वा=आकर्ण्य, क्षितितले=भूतले रेणुभो रूषिताङ्गः धूलिधूसरितः उत्थाय मुहुर्मुहुः पतितोऽपि उत्तिष्ठन्, जीर्णः=वृद्धः शिथिलावयवः कान्तार-द्विरद इव=वन्यगज इव, उपयाति=आगच्छति ॥ १४ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

और धर्म का आचरण करें। स्त्रियाँ पति को ही अपना आधार समझती हैं ॥ १३ ॥

यह महाराज सीता सहित आपका वनगमन तथा भ्रातृ-स्नेह से लक्ष्मण द्वारा अनुगमन सुनकर भूमि पर लोटने के कारण

लक्ष्मणः—आर्य !

चीरमात्रोत्तरीयाणां किं दृश्यं वनवासिनाम्।

रामः—गतेष्वस्मासु राजा नः शिरःस्थानानि पश्यतु॥ १५॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

प्रथमोऽङ्कः

विवृति—चीरमात्रमुत्तरीयम् येषां ते चीरमात्रोत्तरीयाः तेषाम् = वल्कल मात्र धारण करने वाले। दृश्यम् (दृश् + य), गतेषु (गम् + क्त + सुप्)।

अन्वय :—चीरेति। चीरमात्रोत्तरीयाणां वनवासिनां किम् दृश्यम्। राजा अस्मासु गतेषु नः शिरःस्थानानि पश्यतु॥ १५॥

व्याख्या—चीरमात्रोत्तरीयाणाम् = वल्कलमात्रपरिधानानाम्, वनवासिनाम् वने निवसताम् अस्माकं किं दृश्यम् किम् विलोकनीयम्। राजा = महाराजः अस्मासु सर्वेषु वनं गतेषु नः = अस्माकम्, शिरःस्थानानि = प्रधानस्थानानि, पश्यतु = अवलोकयतु। अस्मदधिष्ठितस्थानावलोकनेन आत्मानं सान्त्वयतु॥ १५॥

हिन्दी रूपान्तर—

धूलि-धूसरित हो कर उठ-उठ कर जर्जरित जंगली गज के समान यहीं आ रहे हैं॥ १४॥

लक्ष्मण—आर्य! वल्कल मात्र धारण करने वाले जंगली का क्या देखना है!

राम—अब हम लोगों के जाने पर महाराज हमारे प्रधान स्थानों को देखेंगे॥ १५॥

(सबका प्रस्थान)

इति प्रथम अंक

अथ द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—भो भोः प्रतिहारव्यापृताः ! स्वेषु स्वेषु स्थानेषु अप्रमत्ताः भवन्तु भवन्तः ।

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—आर्य ! किमेतत् ?

काञ्चुकीयः—एष हि महाराजः सत्यवचनरक्षणपरो राममरण्यं गच्छन्तम् उपावर्तयितुमशक्तः पुत्रविरहशोकाग्निना दग्धहृदयः उन्मत्त इव बहु प्रलपन् समुद्रगृहके शयानः—

विवृति—प्रतीहारे = द्वारदेशे, व्यापृताः नियुक्ताः = दरवाजे पर स्थित, अप्रमत्ताः = सावधान, सत्यवचनस्य रक्षणे परः = सत्यवचन की रक्षा में तत्पर अरण्यम् = वन ।

हिन्दी रूपान्तर—

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—हे द्वारपालो ! आप लोग अपने-अपने स्थान पर सावधान हो जाइये ।

(प्रवेश करके)

प्रतीहारी—आर्य, यह क्या ?

कञ्चुकी—सत्य वचन की रक्षा में तत्पर यह महाराज वन जाते हुए राम को लौटाने में असमर्थ होकर पुत्र-वियोग की दुःखाग्नि से जलते हुए पागल की भाँति बहुत रोते हुए समुद्र-गृह में पड़े हैं ।

मेरुश्चलन्निव युगक्षयसन्निकर्षे
शोषं व्रजन्निव महोदधिरप्रमेयः ।
सूर्यः पतन्निव च मण्डलमात्रलक्ष्यः ।
शोकाद्भृशं शिथिलदेहमतिर्नरेन्द्रः ॥ १ ॥ 62, 65, 68

प्रतीहारी—हा हा ! एवं गतो महाराजः ।

काञ्चुकीयः—एष महाराजः—

विवृति—युगस्य क्षयः तस्य सन्निकर्षः तस्मिन् = युगान्त के उपस्थित होने पर, मण्डल मात्रेण लक्ष्यः = किरणों के सिमटने पर मण्डल-मात्र दिखाई देने वाला, भृशम् = अत्यधिक, शिथिलः देहः मतिः च यस्य सः = शिथिल शरीर और बुद्धिवाले ॥ १ ॥

अन्वयः—(मेरुरिति) युगक्षयसन्निकर्षे मेरुः चलन्निव अप्रमेयः महोदधिः शोषं व्रजन्निव मण्डलमात्रलक्ष्यः सूर्यः पतन्निव च नरेन्द्रः शोकात् भृशं शिथिलदेहमतिः (अस्तीति शेषः) ॥ १ ॥

व्याख्या—युगक्षयसन्निकर्षे = युगान्तकाले प्राप्ते मेरुः सुमेरुः चलन् इव कम्पमान इव, अप्रमेयः = अपरिच्छेद्यः, महोदधिः = सागरः, शोषं व्रजन् = शुष्यन् इव, मण्डलमात्रलक्ष्यः = मण्डलाकार इव लक्ष्यमाणः सूर्यः = भानुः पतन्निव धरातलं निपतन्निव नरेन्द्रः महाराजो दशरथः शोकात् शिथिलदेह-मतिः = अवसन्नकायबुद्धिरस्ति ॥ १ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

युग का अन्तकाल आ जाने पर चलायमान सुमेरु पर्वत की भाँति, [redacted] महासागर की भाँति, किरणों के सिमट जाने पर मण्डलरूप दिखाई देने वाले गिरते हुए सूर्य की भाँति राजा पुत्र-वियोग के शोक से अत्यधिक शिथिलकाय और बुद्धिहीन हो गये हैं ॥ १ ॥

प्रतीहारी—हा ! महाराज की यह दशा हो गयी !

कञ्चुकी—अरे महाराज तो—

पतत्युत्थाय चोत्थाय हाहेत्युच्चैर्लपन् मुहुः ।
दिशं पश्यति तामेव यया यातो रघूद्वहः ॥ २ ॥

(निष्क्रान्तौ)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टौ राजा देव्यौ च)

राजा—हा वत्स राम, जगतां नयनाभिराम,
हा वत्स लक्ष्मण सलक्षणसर्वगात्र ।
हा साध्वि मैथिलि ! पतिस्थित चित्तवृत्ते,
हा हा गताः किल वनं बत मे तनूजाः ॥ ३ ॥

विवृति—लपन् = रट लगाते हुए। रघूद्वहः = रघुवंशियों में श्रेष्ठ, नयनाभिराम = नेत्र को आनन्द देने वाले, लक्षणेन सहितं सर्वगात्रं यस्य तत्सम्बुद्धौ सलक्षणसर्वगात्र = शुभ लक्षणों से युक्त शरीर वाले, पत्यौ स्थिता चित्तवृत्तिः यस्याः सा पतिस्थितचित्तवृत्तिः, तत्सम्बद्धौ हे पतिस्थितचित्तवृत्ते = पति में ही मन लगाने वाली ! तनूजाः = पुत्र।

अन्वयः—(पततीति) हा हा इत्युच्चैः मुहुः लपन् उत्थाय उत्थाय च पतति, तामेव च दिशं पश्यति, यया रघूद्वहः यातः ॥ २ ॥

व्याख्या—एष महाराजो दशरथः हा हेति उच्चैः = तारस्वरेण, मुहुः = भूयो भूयः, लपन् = रटन् उत्थाय उत्थाय पतति भूमौ लुण्ठति तामेव च दिशं पश्यति, यया दिशा रघूद्वहः = राघवेन्द्रः रामः, यातः = गतः ॥ २ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

"हा हा !" इस प्रकार ऊँचे स्वर से रट लगाते हुए बार-बार उठकर गिर पड़ते हैं और उसी दिशा की ओर देखते रहते हैं, जिधर रामचन्द्र जी गये हैं ॥ २ ॥

(दोनों जाते हैं)

(तदनन्तर उसी अवस्था में राजा और देवियों का प्रवेश)

चित्रमिदं भोः यद् भ्रातृस्नेहात् पितरि विमुक्तस्नेहमपि तावल्लक्ष्मणं द्रष्टुमिच्छामि । वधु वैदेहि !

सूर्य इव गतो रामः सूर्यं दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः ।
सूर्यदिवसावसाने छायेव न दृश्यते सीता ॥ ४ ॥

विवृति—चित्रम् = आश्चर्यं, विमुक्तः स्नेहः येन सः तम् विमुक्तस्नेहम्=प्रेम छोड़ देने वाले । द्रष्टुम् (दृश् + तुमुन्) देखने के लिए । सूर्यश्च दिवसश्च सूर्यदिवसौ तयोः अवसानं तस्मिन् सूर्यदिवसावसाने । सन्तप्य (सम् + तप् + ल्यप्), कर्तुम् (कृ + तुमुन्), न स्निग्धः अस्निग्धः तादृशस्य पुत्रस्य प्रसवः यस्याः सा अस्निग्धपुत्रप्रसविनी ।

अन्वयः—हा जगतां नयनाभिराम ! वत्स राम ! हा सलक्षणसर्वगात्र ! वत्स लक्ष्मण ! हा पतिस्थितचित्तवृत्ते ! साध्वि मैथिलि ! बत हा हा मे तनूजाः वनं गताः किल ॥ ३ ॥

व्याख्या—हा जगताम् लोकानां नयनाभिराम = लोचनरोचन ! हा सलक्षणसर्वगात्र = शुभलक्षणसमन्वितसर्वावयव ! हा पतिस्थितचित्तवृत्ते पतिपरायणे साध्वि मैथिलि ! बतेति कष्टद्योतकम्, हा हा मे = मम, तनूजाः = पुत्राः वनं गताः, किलेति निश्चये ॥ ३ ॥

अन्वयः—सूर्येति । सूर्य इव रामः गतः । दिवसः सूर्यमिव लक्ष्मणः (रामम्) अनुगतः । सूर्यदिवसावसाने छाया इव सीता न दृश्यते ॥ ४ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

राजा—हा ! संसार के नेत्रों को सुख देने वाले वत्स राम ! अच्छे लक्षणों वाले वत्स लक्ष्मण ! हा ! पतिपरायण साध्वी सीते ! अपार दुःख है, कि मेरे पुत्र निश्चय ही वन चले गये ॥ ३ ॥

आश्चर्य है कि भ्रातृप्रेम के कारण पिता का स्नेह छोड़ने वाले लक्ष्मण को मैं देखना चाहता हूँ । हा वधू सीते !

(ऊर्ध्वमवलोक्य) भोः कृतान्तहतक !

कौसल्या—(सरुदितम्) अलमिदानीं महाराजोऽतिमात्रं सन्तप्य परवशमात्मानं कर्त्तुम् ।

राजा—का त्वं भोः ?

कौसल्या—अस्निग्धपुत्रप्रसविनी खल्वहम् ।

राजा—कौसल्ये ! सारवती खल्वसि । (विलोक्य) इयमपरा का ?

कौसल्या—महाराज ! वत्सलक्ष्मण—(इत्यर्धोक्ते)

राजा—(सहसोत्थाय) क्वासौ क्वासौ लक्ष्मणः ? न दृश्यते । भोः कष्टम् ! (भूमौ निपतितः)

(देव्यौ ससम्भ्रममुत्थायं राजानमवलम्बेते)

विवृति—सारवती = धन्या, दृश्यते इत्यत्र कर्मणि लकारः । वक्तुम् (वच् + तुमुन्), प्राप्तः (प्र + आप् + क्त) उपस्थित हैं । सहर्षम् हर्षेण सहितं सहर्षम् । समाश्वसिहि = धीरज रखिये ।

व्याख्या—सूर्यं इव = भानुरिव रामः वनं गतः । दिवसः सूर्यमिव लक्ष्मणः राममनुगतः = अनुसृतवान् । सूर्यदिवसावसाने = सूर्यदिवसयोः गतयोः सायंकाले छाया इव सीता न दृश्यते । एते त्रयोपि अदृश्याः जाताः ॥ ४ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

सूर्य की भाँति रामचन्द्र चले गये । सूर्य के पीछे चलने वाले दिन की तरह राम के पीछे लक्ष्मण चले गये । सूर्य और दिन के अन्त होने पर छाया की तरह सीता भी नहीं दिखायी देती । (ऊपर देखकर) हा ! दुर्दैव ! ॥ ४ ॥

कौसल्या—(विलाप करती हुई) महाराज ! इस समय अधिक सन्ताप से अपने को विवश न कर दीजिये ।

राजा—तुम कौन हो ?

कौसल्या—स्नेहहीन पुत्र को पैदा करने वाली मैं हूँ ।

राजा—कौसल्या ! तुम धन्य हो । (देखकर) यह दूसरी कौन है ?

कौसल्या—महाराज ! वत्स लक्ष्मणस्य जननी सुमित्रेति मया वक्तु-
मुपक्रान्तम् ।

राजा—अयि सुमित्रे ! सत्पुत्रवती असि ।

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः । एष खलु तत्र भवान् सुमन्त्रः प्राप्तः ।

राजा— (सहर्षमुत्थाय) अपि रामेण ?

काञ्चुकीयः—न खलु, रथेन ।

राजा— कथं कथं रथेन केवलेन ? (इति मूर्छितः पतति)

देव्यौ—महाराज ! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि ।

राजा—(किञ्चित् समाश्वस्य) सुमन्त्र एक एव ननु प्राप्तः ?

हिन्दी रूपान्तर—

कौसल्या—महाराज ! वत्स लक्ष्मण—(बीच में ही)

राजा—(एकाएक उठकर) कहाँ ! कहाँ हैं लक्ष्मण । नहीं दिखायी देते । हाय ! महाकष्ट ! (भूमि पर गिरते हैं)

(दोनों शीघ्रता से उठकर राजा को सहारा देती हैं)

कौसल्या—महाराज ! वत्स लक्ष्मण की माता सुमित्रा है—यह मैंने कहना आरम्भ किया था ।

राजा—अरे ! सुमित्रे ! तुम गुणवान् पुत्रवाली हो ।

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—महाराज की जय हो । ये सुमन्त्र जी उपस्थित हैं ।

राजा—(शीघ्रता से उठकर) क्या राम के साथ ?

कञ्चुकी—नहीं रथ के सहित ।

राजा—क्या केवल रथ के सहित ? (मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं)

देवियाँ—महाराज ! धीरज रखिये, धीरज रखिये ।

राजा—(कुछ सँभल कर) क्या सुमन्त्र अकेले ही आये हैं ?

काञ्चुकीयः—महाराज ! अथ किम् ?

राजा— शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

काञ्चुकीयः— यदाज्ञापयति महाराजः । (निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति सुमन्त्रः)

सुमन्त्रः— (सर्वतो विलोक्य सशोकम्)

एते भृत्याः स्वानि कर्माणि हित्वा स्नेहाद् रामे जातबाष्पाकुलाक्षाः ।
चिन्तादीनाः शोकसन्दग्ध देहाः विक्रोशन्तं पार्थिवं गर्हयन्ति ॥ ५ ॥

(उपेत्य) जयतु महाराजः ।

विवृति—हित्वा = (हा + क्त्वा) त्यागकर । जातेन बाष्पेग आकुलानि अक्षीणि येषाम् ते जातबाष्पाकुलाक्षाः = आँसू से भींगे नेत्र वाले ।

अन्वयः—एते भृत्याः स्वानि कर्माणि हित्वा रामे स्नेहात् जातबाष्पाकुलाक्षाः चिन्तादीनाः शोकसन्दग्धदेहाः विक्रोशन्तं पार्थिवं गर्हयन्ति॥५॥

व्याख्या—एते = अयोध्यानिवासिनः, भृत्याः = सेवकाः, स्वानि = आत्मीयानि कर्माणि हित्वा त्यक्त्वा, रामे = रामविषये, स्नेहात् = अनुरागात्, जातबाष्पाकुलाक्षाः = उत्पन्नाश्रुलिप्तनयनाः, चिन्तादीनाः = दुःखकातराः । शोकसन्दग्धदेहाः = शोकज्वलितशरीराः, विक्रोशन्तम् = भृशं रुदन्तम्, पार्थिवं = नृपं, गर्हयन्ति = निन्दन्ति ॥ ५ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

कञ्चुकी—महाराज ! और क्या ?

राजा—अच्छा तो शीघ्र ही अन्दर बुलाओ ।

कञ्चुकी—महाराज की जैसी आज्ञा (प्रस्थान)

(सुमन्त्र के साथ प्रवेश)

सुमन्त्र—(सब तरफ देखकर, शोक सहित)

राम के स्नेह से अपने अपने कार्यों को छोड़कर ये नौकर बहते हुए आँसुओं से भींगे हुए नेत्र वाले, चिन्ता से कातर बनकर, शोक के कारण दग्ध होकर, अत्यधिक रोते हुए महाराज की निन्दा करते हैं । (पहुँच कर) महाराज की जय हो ॥ ५ ॥

राजा—भ्रातः सुमन्त्र ! क्व मे ज्येष्ठो रामः कीदृशश्च ?

सुमन्त्रः—महाराज ! आयुष्मान् रामः ।

राजा—राम इति, अयं रामः तन्नामश्रवणात् स्पष्ट इव मे प्रतिभाति । ततस्ततः ?

सुमन्त्रः—आयुष्मान् लक्ष्मणः ।

राजा—अयं लक्ष्मणः । ततस्ततः ?

सुमन्त्रः—आयुष्मती सीता जनकराजपुत्री ।

राजा—क्व ते गताः ?

सुमन्त्रः—शृङ्गवेरपुरे रथादवतीर्य अयोध्याभिमुखाः स्थित्वा सर्वे एव महाराजं शिरसा प्रणम्य विज्ञापयितुमारब्धाः ।

विवृति—कीदृशः = किस प्रकार, तस्य नाम्नः श्रवणं तन्नामश्रवणं तस्मात् तन्नामश्रवणात् = उनका नाम सुनने से ही । स्पृष्ट (स्पृश् + क्त), क्व = कहाँ, अवतीर्य (अव् + तृ + ल्यप्) उतर कर । प्रणम्य (प्र + नम् + ल्यप्) प्रणाम करके, विज्ञापयितुम् (वि + ज्ञा + णिच् + तुमुन्) ।

हिन्दी रूपान्तर—

राजा—भाई सुमन्त्र ! कहाँ मेरा ज्येष्ठ पुत्र राम है और किस प्रकार है ?

सुमन्त्र—महाराज ! सब सकुशल हैं ।

राजा—राम ! उनका यह राम नाम सुनने से ऐसा प्रतीत होता है मानों हृदय से लगा लिया हो । अच्छा तो फिर क्या ?

सुमन्त्र—लक्ष्मण भी सकुशल हैं ।

राजा—यह लक्ष्मण ! अच्छा तो फिर क्या ?

सुमन्त्र—जनकराजपुत्री सीता भी सकुशल हैं ?

राजा—वे सब कहाँ गये ?

सुमन्त्र—शृङ्गवेरपुर में रथ से उतर कर अयोध्या की ओर अभिमुख होकर सब लोगों ने महाराज को प्रणाम करके कहना आरम्भ किया ।

कमप्यर्थं चिरं ध्यात्वा वक्तुं प्रस्फुरिताधराः ।
वाष्पस्तम्भितकण्ठत्वादनुक्त्वैव वनं गताः ॥ ६ ॥

राजा—कथमनुक्त्वैव वनं गताः (इति मोहमुपगतः)

सुमन्त्रः—(काञ्चुकीयं प्रति) उच्यताममात्येभ्यः-अप्रतीकारदशायां वर्तते महाराजः ।

काञ्चुकीयः—तथा ।

(निष्क्रान्तः)

देव्यौ—महाराज ! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि ।

राजा—(किञ्चित् समाश्वस्य) सुमन्त्र ! उच्यतां कैकेय्याः—

अन्वयः—एष क्रमः लोकानुसारेणैव ॥ ६ ॥

व्याख्या—कमपि विचित्रम् अर्थं चिरं ध्यात्वा = विचिन्त्य, वक्तुम् = कथयितुम्, प्रस्फुरिता अधरा येषां ते प्रस्फुरिताधराः = कम्पितोष्ठाः, वाष्पस्तम्भितकण्ठत्वात् = अश्रुपूर्णकण्ठत्वात्, अनुक्त्वैव अकथयित्वैव वनम् = अरण्यं गताः = प्रस्थिताः ॥ ६ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

वे किसी बात को बहुत देर तक सोचते रहे। उनके अधर फड़क रहे थे, किन्तु आँसू से गला रुँध जाने के कारण बिना कहे ही वन चले गये ॥ ६ ॥

राजा—बिना कुछ कहे ही वन चले गये ? (मूर्छित हो जाते हैं)

सुमन्त्र—(कंचुकी से) मंत्रियों से कह दो—महाराज की दशा चिन्ताजनक है ।

कञ्चुकी—जी अच्छा ।

(प्रस्थान)

देवियाँ—महाराज ! धीरज रखिये, धीरज रखिये ।

राजा—(कुछ सँभलकर) सुमन्त्र, कैकेयी से कह दो—

गतो रामः प्रियं तेऽस्तु त्यक्तोहमपि जीवितैः।
क्षिप्रमानीयतां पुत्रः पापं सफलमस्त्विति ॥ ७ ॥
(ऊर्ध्वमवलोक्य) अये ! रामकथाश्रवणसन्दग्धहृदयं
मां समाश्वासयितुं समागताः पितरः कोऽत्र भोः ?
(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयतु महाराजः।

राजाः—आपस्तावत्।

विवृति—क्षिप्रम् = शीघ्र। रामस्य कथायाः श्रवणेन सन्दग्धं हृदयं यस्य सः तम् रामकथाश्रवणसन्दग्धहृदयम् = राम की कथा अर्थात् वनगमन आदि को सुनकर हृदय जल गया है जिसका। आपः = जल।

अन्वयः—रामः गतः ते प्रियम् अस्तु अहम् अपि जीवितैः त्यक्तः। पुत्रः क्षिप्रम् आनीयताम् पापम् सफलम् अस्तु ॥ ७ ॥

व्याख्या—रामः मे ज्येष्ठपुत्रः वनं गतः। ते = तव, प्रियम् = अभिलषितम्, हितमस्तु = भवतु। अहं पुत्रवियुक्तः जीवितैः प्राणैः त्यक्तः रहितः जातः। पुत्रः भरतः अभिषेकार्थं क्षिप्रम् आनीयताम् = आनेतव्यः, पापं त्वत् कृतं दुष्कर्म सफलमस्तु पूर्णतां यातु ॥ ७ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

राम चले गये, तुम्हारा प्रिय हो। मैं भी प्राणों से रहित हो रहा हूँ। अपने पुत्र को शीघ्र बुलवा लो। तुम्हारा पापमय मनोरथ सफल हो ॥ ७ ॥

(ऊपर देखकर) अरे ! राम की कथा सुनने से जलते हुए हृदय वाले मुझे धीरज देने के लिए पितर लोग आ रहे हैं। कौन है ?

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी—महाराज की जय हो।

राजा—जल ले आओ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति महाराजः (निष्क्रम्य प्रविश्य) जयतु महाराजः, इमा आपः।

राजा—(आचम्य, अवलोक्य)

अयममरपतेः सखा दिलीपः रघुरयमत्र भवानजः पिता मे।
किमभिगमनकारणं भवद्भिः सह वसने समयो ममापि तत्र ॥ ८ ॥६५

विवृति—अमराणां पतिः अमरपतिः तस्य अमरपतेः = इन्द्र के, अभिगमनस्य कारणम् अभिगमनकारणम् = पहुँचने का हेतु। वसने = रहने में, सकाशम् = समीप।

अन्वयः—अयम् अमरपतेः सखा दिलीपः, अयम् रघुः, अयम् अत्र भवान् अजः अभिगमनकारणं किम्। तत्र भवद्भिः सह वसने ममापि समयः (अस्ति) ॥ ८ ॥

व्याख्या—अयम् अमरपतेः देवराजस्य इन्द्रस्य सखा दिलीपः अस्मत् प्रपितामहः। अयम् रघुः मम पितामहः, अयम् अत्र भवान् पूज्यः मे = मम पिता अजः। भवताम् अभिगमनकारणम् किम् = आगमनस्य को हेतुः। तत्र स्वर्गे भवद्भिः सह = सार्धम् वसने निवासे ममापि समयः। अहमपि प्राणान् त्यक्त्वा आयामीत्यर्थः ॥ ८ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

कञ्चुकी—जो महाराज की आज्ञा (निकल कर पुनः प्रवेश करके) महाराज की जय हो। यह जल।

राजा—(आचमन करके और देखकर) यह देवराज इन्द्र के परम सखा दिलीप मेरे प्रपितामह हैं। यह रघु मेरे पितामह हैं। यह परम पूज्य मेरे पिता अज हैं। आपके आने का क्या कारण है ? वहाँ आप लोगों के साथ रहने का मेरा भी समय आ गया है ॥ ८ ॥

राजा—राम ! लक्ष्मण ! वैदेहि ! अहमितः पितॄणां सकाशं गच्छामि । हे पितरः ! अयमहमागच्छामि । (मूर्छया परामृष्टः)

सर्वे—हा हा महाराजः । हा हा महाराजः ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ इति द्वितीयोऽङ्कः ॥

हे राम ! हे लक्ष्मण ! हे सीता ! मैं यहाँ से पितरों के पास जा रहा हूँ । हे पूर्वजो ! यह मैं आ रहा हूँ । (मूर्छित हो जाते हैं)

सब—हा महाराज ! हा महाराज !

(सब का प्रस्थान)

(इति द्वितीय अंक)

तृतीयोऽङ्कः

(प्रविशति भरतो रथेन सूतश्च)

भरतः—(सवेगम्) सूत ! चिरं मातुलपरिचयाद् अविज्ञात-वृत्तान्तोऽस्मि । श्रुतं मया दृढमकल्यशरीरो महाराज इति । तदुच्यताम्—

पितुर्मे को व्याधिः ?

सूतः— हृदयपरितापः खलु महान्,

विवृति—सूतः = सारथी, मातुलस्य परिचयात् मातुलपरिचयात् = मामा के यहाँ रहने से, अविज्ञातवृत्तान्तः = समाचार नहीं ज्ञात है । अकल्यं शरीरं यस्य सोऽकल्यशरीरः = अस्वस्थ । भिषजः = वैद्य । निरशनः = बिना भोजन किये हुए । दैवम् = भाग्य, स्फुरति = फड़कता है ।

अन्वयः—मे पितुः को व्याधिः ? महान् हृदयपरितापः खलु । वैद्याः तम् किमाहुः । तत्र भिषजः न निपुणाः खलु । आहारं किम् भुंक्ते ? शयनमपि क्व ? भूमौ निरशनः । किम् आशा स्यात् ? दैवम् । हृदयं स्फुरति, रथम् वाहय ॥ १ ॥

व्याख्या—मे = मम पितुः जनकस्य को व्याधिः कः रोगः । महान् हृदयपरितापः = चित्तदाहः । वैद्याः तं पितरम् किम् आहुः = अकथयन् । तत्र = तद्रोग-निराकरणे, भिषजः = वैद्याः, न निपुणाः = न कुशलाः । किमाहारम् = पथ्यम्, भुंक्ते = खादति ? क्व शयनं क्रियते ? निरशनः = भोजन-रहितः, भूमौ धरित्र्यां शेते । किम् = कथम् आशा स्यात् ? दैवम् = भाग्यम्, हृदयम् = मानसम्, स्फुरति = कम्पते, रथम् = स्यन्दनं, वाहय = चालय ॥ १ ॥

भरतः—किमाहुस्तं वैद्याः ?
सूतः—न खलु भिषजस्तत्र कुशलाः।
भरतः—किमाहारं भुङ्क्ते शयनमपि,
सूतः—भूमौ निरशनः,
भरतः—किमाशा स्यात् ?
सूतः—दैवम्,
भरतः—स्फुरति हृदयं वाहय रथम् ॥ १ ॥
सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान्

(रथं वाहयति)

हिन्दी रूपान्तर—

(रथ से सूत और भरत का प्रवेश)

भरत—सूत ! चिरकाल से मामा जी के यहाँ रहने से मुझे कुछ भी वृत्तान्त नहीं ज्ञात है। मैंने सुना है महाराज अस्वस्थ हैं। तो कहिये।

भरत—पिता जी को क्या रोग है ?
सूत—हृदय में अत्यधिक जलन।
भरत—वैद्यों ने उनसे क्या कहा है ?
सूत—वैद्य लोग उस विषय में कुशल नहीं हैं।
भरत—क्या भोजन करते हैं और कहाँ सोते हैं ?
सूत—बिना भोजन के जमीन पर ही सोते हैं।
भरत—क्या आशा है ?
सूत—भाग्य जैसा हो।
भरत—मेरा हृदय धड़क रहा है, रथ चलाइये ॥ १ ॥
सूत—जो कुमार की आज्ञा।

(रथ चलाता है)

भरतः—(रथवेगं रूपयित्वा) अहो नु खलु रथवेगः ! एते ते—

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया

नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे।

अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं,

रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति ॥ २ ॥

विवृति—द्रुमाः = वृक्ष, द्रुतया रथस्य गत्या क्षीणः विषयः येषां ते द्रुत-रथगतिक्षीणविषयाः = रथ की तीव्रता के कारण न दिखाई देने वाले उद्वृत्तम् अम्बु यस्याः सा उद्वृत्ताम्बुः = वेगपूर्ण जलवाली ।

अन्वयः—द्रुतरथगतिक्षीणविषयाः द्रुमाः धावन्ति इव । उद्वृत्ताम्बुः नदी इव मही नेमिविवरे निपतति । अरव्यक्तिः नष्टा । जवात् चक्रवलयम् स्थितमिव । अश्वोद्धूतं रजः पुरतः पतति न अनुपतति ॥ २ ॥

व्याख्या—द्रुतरथगतिक्षीणविषया = तीव्रवेगस्यन्दनानवलोकिताः द्रुमाः = वृक्षाः धावन्ति इव । उद्वृत्ताम्बुः = उद्भ्रान्तजला नदी इव मही नेमिविवरे = प्रतिरन्ध्रे निपतति, चक्रमण्डलं स्थितम् इव = अविचलितमिव । अश्वोद्धतम् = अश्वखुरोत्पतितम्, रजः = धूलिः, पुरतः = अग्रे, पतति न अनुपतति = अनुगच्छति ॥ २ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—(रथवेग देखकर) रथ का वेग कैसा विचित्र है। ये वृक्ष तीव्रवेग होने के कारण आँखों से ओझल होकर दौड़े जाते हैं। चञ्चल वेग वाली नदी की भाँति पृथ्वी धुरी के बीच में गिर रही है। पहिये कि अरपंक्ति स्पष्ट नहीं दिखाई देती। वेग में कारण मानो चक्रमण्डल रुक गया है। घोड़ों के खुर से उठी हुई धूल आगे पड़ जाती है किन्तु पीछे नहीं चल पाती ॥ २ ॥

(शनैः शनैः रथादवतरति भरतः)

(प्रविश्य)

भटः— जयतु कुमारः ।

भरतः—भद्र ! किं शत्रुघ्नो मामभिगतः ?

भटः— आगतः खलु वर्तते कुमारः। उपाध्यायास्तु भवन्तम् आहुः ।

भरतः—किमिति किमिति ।

भटः— एकनाडिकावशेषः कृत्तिकाविषयः तस्मात् प्रतिपन्नायामेव रोहिण्यामयोध्यां प्रवेक्ष्यति कुमारः ।

भरतः—बाढम्, एवम् न मया गुरुवचनमतिक्रान्तपूर्वम् । गच्छ त्वम् ।

विवृति—अभिगतः (अभि + गम् + क्त) एका नाडिका अवशेषा यत्र सः एकनाडिकावशेषः = एक घटिका शेष, प्रतिपन्नायाम् (प्रति + पद् + क्त) प्राप्त होने पर। प्रवेक्ष्यति = प्रवेश करेंगे। पूर्वं अतिक्रान्तम् इति अतिक्रान्तपूर्वम् = पहिले उल्लंघित किया हुआ ।

हिन्दी रूपान्तर—

(भरत धीरे-धीरे रथ से उतरते हैं)

(प्रवेश करके)

भट—कुमार की जय हो ।

भरत—महाशय जी ! क्या शत्रुघ्न मेरे पीछे आ रहे हैं ?

भट—जी हाँ ! आ गये हैं । आचार्यों ने आप से कहा है ।

भरत—क्या क्या ?

भट—कृत्तिका नक्षत्र का एक दण्ड शेष रह गया है । अतः रोहिणी के लग जाने पर कुमार अयोध्या में प्रवेश करें ।

भरत—अच्छा ! मैंने कभी गुरुजनों के कथन का उल्लंघन नहीं किया है । तुम जाओ ।

भटः—यदाज्ञापयति कुमारः।

(निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति मन्दिरं भरतः)

भरतः—(प्रतिमाः विलोक्य) नमोऽस्तु।

देवकुलिकः—न खलु न खलु प्रणामः कार्यः।

भरतः—मा तावद् भोः।

वक्तव्यं किञ्चिदस्मासु विशिष्टः प्रतिपाल्यते।
किं कृतः प्रतिषेधोऽयं नियमप्रभविष्णुता ॥ ३ ॥

विवृति—विशिष्ट = श्रेष्ठ, नियमे प्रभविष्णुता नियमप्रभविष्णुता = नियम में अधिकार। प्रतिषेधयामि = रोकता हूँ। दैवतशंकया = देवता की शंका से।

अन्वयः—किञ्चित् किमपि अस्मासु वक्तव्यम्। विशिष्टः प्रतिपाल्यते। अयं प्रतिषेधः किं कृतः नियमप्रभविष्णुता किम् ? ॥ ३ ॥

व्याख्या—किञ्चित् किमपि अस्मासु = अस्मद् विषये वक्तव्यम् = दोषकथनं किम् ? वा विशिष्टः मदपेक्षया विशिष्टः = श्रेष्ठः जनः प्रतिपाल्यते = प्रतीक्ष्यते। अयं प्रणामनिषेधः किं कृतः = कथं विहितः। अथवा नियमप्रभविष्णुता = नियमदृढतागर्वः किम् ? ॥ ३ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

भट—जैसी कुमार की आज्ञा।

(प्रस्थान)

(भरत का मन्दिर में प्रवेश)

भरत—(प्रतिमा देखकर) नमस्कार।

देवकुलिक—नहीं नहीं, प्रणाम मत करो।

भरत—क्यों नहीं ?

क्या मुझमें कोई दोष है अथवा और किसी श्रेष्ठजन के प्रणाम करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह निषेध क्यों ? क्या यह प्रणाम का अधिकार आपको ही प्राप्त है ? ॥ ३ ॥

देवकुलिकः—न खलु एतैः कारणैः प्रतिषेधयामि भवन्तम्। किन्तु दैवतशंकया ब्राह्मणस्य प्रणामं परिहरामि। क्षत्रिया ह्यत्रभवन्तः।

भरतः— एवम्! क्षत्रिया ह्यत्र भवन्तः। अथ के नामात्र भवन्तः।

देवकुलिकः—इक्ष्वाकवः।

भरतः— यदृच्छया खलु मया महत् फलमासादितम्। सुव्यक्तमभिधीयताम्।

देवकुलिकः—अयं दिलीपः, अयं रघुः, अयमजः, अयं दशरथः।

भरतः— किं धरमाणानामपि प्रतिमाः स्थाप्यन्ते।

देवकुलिकः—न खलु अतिक्रान्तानामेव।

विवृति—यदृच्छया = अकस्मात्, आसादितम् = प्राप्त किया। सुव्यक्तम् = स्पष्ट, धरमाणानाम् = जीवितों की। अतिक्रान्तानाम् = मृतकों की। भवन्तम् इत्यत्र अकथितं चेति कर्मत्वम्।

हिन्दी रूपान्तर—

देवकुलिक—मैं इन कारणों से आपको नहीं रोक रहा हूँ। कहीं आप ब्राह्मण होकर देवशंका से प्रणाम न कर लें। इसी कारण से रोकता हूँ। ये प्रतिमाएँ क्षत्रियों की हैं।

भरत—अच्छा! ये सब क्षत्रिय हैं। इनका क्या नाम है?

देवकुलिक—ये इक्ष्वाकुवंशीय हैं।

भरत—अकस्मात् ही मुझे बड़ा फल मिल गया। अच्छा तो स्पष्ट कहिये।

देवकुलिक—ये दिलीप हैं, ये रघु हैं, ये अज हैं और ये महाराज दशरथ हैं।

भरत—क्या जीवितों की भी प्रतिमाएँ स्थापित की जाती हैं?

देवकुलिक—नहीं, मृतकों की ही।

भरतः— तेन हि पृच्छामि भवन्तम् प्रतिमामिमाम्।

देवकुलिकः—शृणु—

येन प्राणाश्च राज्यं च स्त्रीशुल्कार्थे विसर्जिताः।
इमां दशरथस्य त्वं प्रतिमां किं नु पृच्छसि ॥४॥

भरतः— हा तात! (मूर्छितः पतति, पुनः प्रत्यागत्य)
हृदय! भव सकामं यत् कृते शङ्कसे त्वम्
शृणु पितृनिधनं तद् गच्छ धैर्यं च तावत्।

विवृति—विसर्जिताः = त्याग दिये, प्रत्यागत्य = चेतना में आकर। सकामम् = पूर्ण इच्छा वाले, पितुः निधनम् पितृनिधनम् = पिता की मृत्यु।

अन्वयः—येनेति—येन स्त्रीशुल्कार्थे प्राणाश्च राज्यं च विसर्जिताः त्वम् दशरथस्य इमाम् प्रतिमां किन्नु पृच्छसि ॥ ४ ॥

व्याख्या—येन = लोकविश्रुतेन, स्त्रिया शुल्कार्थे = पत्नीकृते संकल्पित द्रव्यार्थं, प्राणाः = जीवितम्, राज्यम् = इदं सम्पूर्णं साम्राज्यम्, विसर्जिताः = त्यक्ताः। त्वम् तस्य महाराजस्य दशरथस्य इमां पुरःस्थां प्रतिमां मूर्तिं प्रति किन्नु पृच्छसि? ॥ ४ ॥

अन्वयः—(हृदयेति) हे हृदय! सकामं भव। त्वम् यत् कृते शङ्कसे तत् पितृनिधनं शृणु धैर्यं च तावत् गच्छतु। यदि नीचः अयं शुल्कशब्दः मां स्पृशति। अथ च सत्यं भवति तत्र देहः विशोध्यः ॥ ५ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—तो फिर मैं आप से इस प्रतिमा के विषय में पूछता हूँ।

देवकुलिक—सुनो! जिन्होंने स्त्रीशुल्क के लिये अपने राज्य और प्राण सब छोड़ दिये। महाराज दशरथ की प्रतिमा के विषय में आप क्या पूछते हैं? ॥ ४ ॥

स्पृशति तु यदि नीचो मामयं शुल्कशब्दस्
त्वथ च भवति सत्यं तत्र देहो विशोध्यः ॥ ५ ॥

देवकुलिकः—कच्चित् कैकेयीपुत्रो भरतो भवान् ननु ?

भरतः—अथ किम् ।

देवकुलिकः—तेन ह्यापृच्छे भवन्तम् ।

भरतः—शेषमभिधीयताम् ।

देवकुलिकः—का गतिः ? श्रूयताम्, उपरतस्तत्रभवान् दशरथः सीता-लक्ष्मणसहायस्य रामस्य वनगमनप्रयोजनं न जाने ।

व्याख्या—हे हृदय ! त्वम् सकामं पूर्णमनोरथं भव यत् कृते यस्मिन् विषये शङ्कसे चिन्तयसि तत् पितृनिधनं = पितृमरणं शृणु । धैर्यम् = स्थैर्यं च गच्छ = प्राप्नुहि । किन्तु यदि नीचः = गर्हितः अयं शुल्कशब्दः मां स्पृशति मां विषयीकरोति । अथ च सत्यं भवति तत्र तर्हि देहः = शरीरम् विशोध्यः । अग्निपुटपाकादिना शुद्धिं प्रापणीयः ॥ ५ ॥

भरत—हा तात ! (मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं, फिर चेतना पाकर) हे हृदय ! अब तुम पूर्ण मनोरथ वाले हो जाओ । जिसकी तुम शंका करते थे; वही पितृमरण सुनो, अब धीरज धारण करो । यह नीच स्त्रीशुल्क शब्द यदि मुझे ही विषय बनाना चाहता है, यदि यह बात सत्य है तो मुझे अग्नि से शरीर शुद्ध ही करना होगा ॥ ५ ॥

देवकुलिक—क्या आप कैकेयी के पुत्र भरत हैं ?

भरत—और क्या ?

देवकुलिक—अच्छा तो आज्ञा दीजिये ।

भरत—शेष तो कहिये ।

देवकुलिक—क्या वश ? सुनिए, महाराज दशरथ का देहावसान हो गया, किन्तु सीता और लक्ष्मण के सहित राम के वन गमन का कारण नहीं जानता ।

भरतः—कथं कथमार्योऽपि वनं गतः । (मोहमुपगतः)

देवकुलिकः—कुमार ! समाश्वसिहि, समाश्वसिहि ।

भरतः—(समाश्वस्य)

अयोध्यामटवीभूतां पित्रा-भ्रात्रा च वर्जिताम् ।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षीणतोयां नदीमिव ॥ ६ ॥

देवकुलिकः—श्रूयताम्, तत्र भवति रामे अभिषिच्यमाने भवतो-जनन्याभिहितम् किल ।

विवृति—कच्चित् = क्या, उपरतः = मर गये । सीता च लक्ष्मणश्च सीतालक्ष्मणौ तौ सहायौ यस्य सः तस्य सीतालक्ष्मणसहायस्य । अटवी = वन, वर्जिताम् = रहित, क्षीणतोयाम् = जलरहित ।

अन्वयः—पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम् अटवीभूताम् अयोध्याम् पिपासार्तः क्षीणतोयाम् नदीम् इव अनुधावामि ।। ६ ।।

व्याख्या—पित्रा = जनकेन परलोकगतेन तातेन भ्रात्रा = वनं गतेन आर्येण रामेण वर्जिताम् अयोध्याम् पिपासया आर्तः = व्याकुलः, क्षीणतोयाम् = शुष्कजलाम् नदीम् इव अनुधावामि ।। ६ ।।

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—क्या, क्या आर्य राम भी वन चले गये ? (मूर्छित हो जाते हैं)

देवकुलिक—कुमार धीरज रखिये ।

भरत—(कुछ सँभल कर) पिता और भाई से रहित अयोध्या नगरी वन के समान है । वहाँ मैं उसी प्रकार जा रहा हूँ जिस प्रकार प्यासा सूखी नदी को जाता है ।। ६ ।।

देवकुलिक—सुनिये तो जिस समय श्रीमान् राम का अभिषेक हो रहा था उसी समय आपकी माता ने कहा था ।

भरतः—हा धिक् (मोहमुपगतः)

(ततः प्रविशन्ति देव्यः सुमन्त्रश्च)

सुमन्त्रः— अयं हि पतितः कोऽपि वयस्थ इव पार्थिवः ।

देवकुलिकः—परशङ्कामलं कर्तुं गृह्यतां भरतो ह्ययम् ॥ ७ ॥

(निष्क्रान्तः)

देव्यः— (सहसोपगम्य) हा जात भरत ।

भरतः— (किञ्चित् समाश्वस्य) आर्य !

विवृति—पतितः (पत् + क्त), कर्तुम् (कृ + तुमुन्), जात=पुत्र । वयस्थः=वयसि वर्तमानः ।

अन्वयः—अयं हि कोऽपि वयस्थः पार्थिवः इव पतितः । परशङ्काम् कर्तुम् अलम् । हि अयं भरतः गृह्यताम् ॥ ७ ॥

व्याख्या—अयम् पुरतः पतितः कोऽपि कश्चित् अविज्ञातः वयस्थः वयसि वर्तमानः पार्थिवः नृपः इव निपतितः । परस्य=अपरस्य शंकाम् कर्तुम् अलम् वृथा । अपरस्य वितर्कम् मा कार्षीः इत्यर्थः, हि=यतः अयं भरतः गृह्यताम्=उपचारेण प्रकृतिम् आनेय इत्यर्थः ॥ ७ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—धिक्कार है (मूर्छित हो जाते हैं)

(देवी कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी सहित सुमन्त्र का प्रवेश)

सुमन्त्र—अरे यह कोई गिर गया है। ज्ञात होता है, महाराज दशरथ ही युवावस्था को प्राप्त हो गये हों ॥ ७ ॥

देवकुलिक—आप दूसरे की शंका न करें, यह भरत हैं । सँभालिये ।

(प्रस्थान)

देवियाँ—(एकाएक पास जाकर) हा पुत्र भरत !

भरत—(कुछ सँभल कर) आर्य !

सुमन्त्रः—जयतु महा···(इत्यर्धोक्ते)
भरतः—अथ मातृणाम् इदानीम् कावस्था ?
देव्यः—जात ! एषा नोऽवस्था ।
भरतः—(सुमन्त्रं विलोक्य) अथ सुमन्त्रो भवान् ननु !
सुमन्त्रः—अथ किम् ? सुमन्त्रोऽस्मि ।
भरतः—तात ! अभिवादनक्रममुपदेष्टुमिच्छामि मातृणाम् ।
सुमन्त्रः—कुमार ! इयं तत्र भवतो रामस्य जननी देवी कौसल्या ।
भरतः—अम्ब ! अनपराद्धोऽहमभिवादये ।
कौसल्या—जात ! निःसन्तापो भव ।
सुमन्त्रः—इयं तत्र भवती लक्ष्मणस्य जननी देवी सुमित्रा ।

विवृति—इदानीम् = इस समय, विलोक्य = (वि + लोक + ल्यप्) देखकर सुमन्त्रोऽस्मि (सुमन्त्रः + अस्मि) अभिवादनस्य क्रमम् अभिवादनक्रमम् = प्रणाम करने के क्रम को, उपदेष्टुम् (उप + दिश् + तुमुन्) नअपराद्धः इति अनपराद्धः = निर्दोष । निःसन्तापः = सुखी ।

हिन्दी रूपान्तर—

सुमन्त्र—जय हो महा······(आधा कहने पर)
भरत—इस समय माताओं की कैसी दशा है ?
देवियाँ—पुत्र ! यही हम लोगों की दशा है ।
भरत—(सुमन्त्र को देखकर) अरे ! आप सुमन्त्र हैं ?
सुमन्त्र—जी हाँ ! मैं सुमन्त्र हूँ ।
भरत—तात ! माताओं को प्रणाम करने के लिए क्रम का उपदेश कीजिये ।
सुमन्त्र—कुमार ! यह आर्य राम की माता देवी कौसल्या हैं ।
भरत—निरपराध मैं प्रणाम करता हूँ ।
कौसल्या—पुत्र ! सुखी हो जाओ ।
सुमन्त्र—यह आर्य लक्ष्मण की माता देवी सुमित्रा हैं ।

भरतः—अम्ब ! लक्ष्मणेनातिसन्धितोऽहमभिवादये ।

सुमित्रा—जात ! यशोभागी भव ।

सुमन्त्रः—इयं ते जननी ।

भरतः—(सरोषमुत्थाय) आः पापे !

मम मातुश्च मातुश्च मध्यस्था त्वं न शोभसे ।
गंगायमुनयोर्मध्ये कुनदीव प्रवेशिता ॥ ८ ॥

कैकेयी—जात ! किं मया कृतम् ?

विवृति—अतिसन्धितः = वंचित अर्थात् लक्ष्मण ने राम की सेवा का अवसर मुझसे छीन लिया है । रोषेण सहितम् सरोषम् = क्रोध सहित, उत्थाय = (उद् + स्था + ल्यप्) उठकर, मध्ये तिष्ठति इति मध्यस्था = बीच में रहनेवाली, गंगा च यमुना च इति गंगायमुने तयोः ।

अन्वयः—ममेति-त्वम् मम मातुःमातुश्च मध्यस्था गंगायमुनयोः मध्ये प्रवेशिता कुनदी इव न शोभसे ॥ ८ ॥

व्याख्या—त्वम् मम मातुः = कौसल्यायाः, मातुः = सुमित्रायाः मध्यस्था = मध्यगता गंगायमुनयोः मध्ये स्थिता कुनदी इव न शोभसे । स्वेन कुकृत्येन त्वम् अतीवाधमेत्यर्थः ॥ ८ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—माता ! लक्ष्मण के द्वारा आर्य की चरणसेवा से वंचित मैं प्रणाम करता हूँ ।

सुमित्रा—पुत्र ! यश के भागी बनो ।

सुमन्त्र—यह आपकी माता हैं ।

भरत—(क्रोध से उठकर) आः अपुण्यशालिनि !

मेरी माता कौसल्या और माता सुमित्रा के बीच में स्थिर होकर तुम उसी प्रकार शोभित नहीं होती जिस प्रकार गंगा और यमुना के बीच में प्रविष्ट क्षुद्र सरिता ॥ ८ ॥

कैकेयी—पुत्र ! मैंने क्या किया ?

भरतः—कृतमिति वदसि ।

त्वया राज्यैषिण्या नृपतिरसुभिर्नैव गणितः
सुतं ज्येष्ठं च त्वं व्रज वनमिति प्रेषितवती ।
न शीर्णं यद्दृष्ट्वा जनकतनयां वल्कलवतीम्
अहो धात्रा सृष्टं भवति हृदयं वज्रकठिनम् ॥ ९ ॥ ८।

विवृति—कृतम् = (कृ + क्त) किया, राज्यम् इच्छति इति राज्यैषिणी तया = राज्य चाहने वाली, असुभिः = प्राणों से, न गणितः = नहीं रक्षित किये गये ! शीर्णम् = नष्ट हुआ, वल्कलमस्ति अस्या इति वल्कलवती ताम्, वज्रवत् कठिनम् इति वज्रकठिनम् = वज्र के समान कठिन ।

अन्वयः—भवति ! राज्यैषिण्या त्वया नृपतिः असुभिः नैव गणितः त्वम् च वनं व्रज इति ज्येष्ठं प्रेषितवती । यत् वल्कलवतीम् जनकतनयां दृष्ट्वा न शीर्णम् अहो ! धात्रा वज्रकठिनम् हृदयम् सृष्टम् ॥ ९ ॥

व्याख्या—भवति । राज्यैषिण्या = राज्यं कामयमानया त्वया नृपतिः = महाराजो दशरथः असुभिः = प्राणैः न गणितः परित्यज्यमानो नापेक्षितः—त्वम् च वनं गच्छ इति ज्येष्ठं सुतम् रामम् = विपिनं, प्रेषितवती = प्रहितवती यद् हृदयम् वल्कलवतीम् = वल्कलं वसानाम् जनकतनयाम् = सीतां दृष्ट्वा न शीर्णम् = न विदीर्णम् । अहो धात्रा ब्रह्मणा सृष्टम् = रचितम् हृदयम् वज्रकठिनम् = कुलिश इव कठोरम् भवति ॥ ९ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—क्या किया—अब यह आप पूछती हैं ?

राज्य चाहने वाली तुमने प्राणों से रहित होते हुए महाराज की चिन्ता न की । तुमने "वन जाओ"—इस प्रकार कह कर बड़े भाई राम को भेज दिया ! हा ! जो वल्कल धारण करने वाली सीता को देखकर न फट गया, ब्रह्मा ने वज्र से भी कठोर ऐसे हृदय को बनाया है ॥ ९ ॥

सुमन्त्रः—कुमार ! एतौ वसिष्ठवामदेवौ भवन्तं विज्ञापयतः ।
गोपहीना यथा गावो विलयं यान्त्यपालिताः ।
एवं नृपतिहीना हि विलयं यान्ति वै प्रजाः ॥ १० ॥

भरतः—अनुगच्छन्तु मां प्रकृतयः ।

सुमन्त्र—अभिषेकं परित्यज्य क्व भवान् यास्यति ?

भरतः—अभिषेकमिति । इहात्रभवत्यै प्रदीयताम् ।

सुमन्त्रः—क्व भवान् यास्यति ?

विवृति—गोपैः हीनाः गोपहीनाः = गोपालकों से रहित, विलयम् = विनाश । अपालिताः—अरक्षित ।

अन्वयः—(गोपेति) यथा गोपहीनाः अपालिताः गावः विलयं यान्ति, एवम् नृपतिहीनाः प्रजाः विलयम् यान्ति वै ॥१०॥

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, गोपैः = गोपालैः, हीनाः = रहिताः, अपालिताः—अरक्षिताः, गावः विलयम् = विनाशम् यान्ति । एवम् अनेन प्रकारेण नृपतिहीनाः = नृपरहिताः, प्रजाः = प्रकृतयः, विलयम् यान्ति = नश्यन्ति । अतः शीघ्रम् राज्यभारः गृह्यतामिति भावः ॥ १० ॥

हिन्दी रूपान्तर—

सुमन्त्र—कुमार ! ये वसिष्ठ और वामदेव आपको सूचित करते हैं—
जिस प्रकार गोपालों के बिना अरक्षित गायें नष्ट हो जाती हैं उसी प्रकार राजा से हीन प्रजा नष्ट हो जाती है ॥ १० ॥

भरत—प्रजा मेरा अनुसरण करे ।

सुमन्त्र—अभिषेक को त्याग कर आप कहाँ जायँगे ?

भरत—अभिषेक ! यह मेरी पूज्या माता जी का कर दें ।

सुमन्त्र—आप कहाँ जायँगे ?

भरत—तत्र यास्यामि यत्रासौ वर्तते लक्ष्मणप्रियः ।
नायोध्या तं विनायोध्या सायोध्या यत्र राघवः ॥ ११ ॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति तृतीयोऽङ्कः

अन्वयः—(तत्रेति) यत्र असौ लक्ष्मणप्रियः वर्तते तत्र यास्यामि तम् विना अयोध्या न अयोध्या सा अयोध्या यत्र राघवः वर्तते ।

व्याख्या—यत्र = यस्मिन् स्थाने असौ लक्ष्मणप्रियो रामो वर्तते तत्र तस्मिन्नेव स्थाने यास्यामि = गमिष्यामि, तम् रामम् विना अयोध्या न यत्र राघवः वर्तते सायोध्या अस्ति ।

भरत—मैं वहीं जाऊँगा जहाँ लक्ष्मणप्रिय आर्य राम हैं । उनके बिना अयोध्या अयोध्या नहीं, वही अयोध्या है जहाँ आर्य राम निवास करते हैं ।
(सबका प्रस्थान)

इति तृतीय अंक

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति भरतो रथेन सुमन्त्रः सूतश्च)

भरतः—स्वर्गं गते नरपतौ सुकृतानुयात्रे
पौराश्रुपातसलिलैरनुगम्यमानः ।

विवृति—स्वर्गं गते = स्वर्ग चले जाने पर, सुकृतम् अनुयात्रम् यस्मिन् तत् सुकृतानुयात्रम् = पुण्य साथ देने वाला है जिसका । पौराणाम् अश्रुपाता एव सलिलानि तैः पौराश्रुपातसलिलैः = पुरजन के अश्रुजल से, अनुगम्यमानः = अनुस्रियमाणः = अनुसृत होते हुए । राम इत्यभिधानं यस्य तम् रामाभिधानम् = रामनामक, शशाङ्कम् = चन्द्रम् ।

अन्वयः—स्वर्गमिति–सुकृतानुयात्रे नरपतौ स्वर्गं गते पौराश्रुपातसलिलैः अनुगम्यमानः अकृपणेषु तपोवंनेषु रामाभिधानं जगतः अपरं शशाङ्कम् द्रष्टुम् प्रयामि ।। १ ।।

व्याख्या—सुकृतानुयात्रे = पुण्यसहगामिनि, नरपतौ = महाराजे दशरथे, स्वर्गं गते = मृते, पौराश्रुपातसलिलैः = पुरवासिजनबाष्पजलैः, अनुगम्यमानः = अनुस्रियमाणः, अहम् अकृपणेषु = उदारेषु तपोवनेषु, रामाभिधानम् = रामनामकम् , अपरम् = द्वितीयम् जगतः = लोकस्य, शशाङ्कम् = चन्द्रम् , द्रष्टुम् = अवलोकयितुम् , यामि = गच्छामि ।। १ ।।

हिन्दी रूपान्तर—

(तब सुमन्त्र और सूत के साथ भरत का प्रवेश)

भरत—पुण्यात्मा दशरथ के स्वर्ग चले जाने पर पुरवासियों के अश्रुजल से अनुसृत मैं उदार तपोवन में राम नामक जगत् के द्वितीय चन्द्र

द्रष्टुं प्रयाम्यकृपणेषु तपोवनेषु
रामाभिधानमपरं जगतः शशांकम् ॥ १ ॥

(सुमन्त्रं विलोक्य) भोस्तात !

सुमन्त्रः—कुमार ! अयमस्मि ।

भरतः—मम मातुः प्रियं कर्तुं येन लक्ष्मीर्विसर्जिता ।
तमहं द्रष्टुमिच्छामि दैवतं परमं मम ॥ २ ॥

सुमन्त्रः—कुमार ! एतस्मिन्नाश्रमपदे—

अत्र रामश्च सीता च लक्ष्मणश्च महायशाः ।
सत्यं शीलं च भक्तिश्च येषु विग्रहवत् स्थिताः ॥ ३ ॥

विवृति—कर्तुम् = (कृ + तुमुन्) करने के लिये, विसर्जिता = वि + सृज + क्त) त्यागी गई, द्रष्टुम् = (दृश + तुमुन्) देखने के लिए । महत् यशः यस्य सः ।

अन्वयः—(ममेति) येन मम मातुः प्रियं कर्तुम् लक्ष्मीः विसर्जिता अहं परमम् दैवतम् तम् द्रष्टुम् इच्छामि ॥ २ ॥

व्याख्या—येन = आर्येण रामेण, मम मातुः = कैकेय्याः, प्रियम् = हितम् कर्तुम् लक्ष्मीः विसर्जिता = त्यक्ता, अहम् सेवकः भरतः मम परमम् प्रकामम् दैवतम् तम् द्रष्टुम् = अवलोकयितुम् इच्छामि ॥ २ ॥

अन्वयः—(अत्रेति) अत्र रामः च सीता च महायशाः लक्ष्मणश्च येषु सत्यं शीलं भक्तिश्च विग्रहवत् स्थिताः ॥ ३ ॥ (व्याख्या स्पष्टा)

हिन्दी रूपान्तर—

को देखने के लिए जा रहा हूँ ॥ १ ॥
(सुमन्त्र को देखकर) हे तात !

सुमन्त्र—कुमार ! यहाँ मैं उपस्थित हूँ ।

भरत—मेरी माता का प्रिय करने वाले जिस आर्य ने लक्ष्मी का परित्याग कर दिया, अपने परमाराध्य उन्हीं राम को मैं देखना चाहता हूँ ॥ २ ॥

सुमन्त्र—कुमार ! इसी आश्रम में—

राम, सीता और महायशस्वी लक्ष्मण विराजमान हैं । उनमें सत्य, शील और भक्ति मूर्तिमान होकर स्थित हैं ॥ ३ ॥

भरतः—तेन हि स्थाप्यतां रथः।
सूतः—यदाज्ञापयत्यायुष्मान् (तथा करोति)
भरतः—(रथादवतीर्य) भोस्तात ! निवेद्यतां निवेद्यतां तत्र भवते पितृवचनकराय राघवाय।
निर्घृणश्च कृतघ्नश्च प्राकृतः प्रियसाहसः।
भक्तिमानागतः कश्चित् कथं तिष्ठतु यात्विति ॥ ४ ॥

विवृति—स्थाप्यताम् = रोक दीजिये, निवेद्यताम् = सूचित कर दीजिये। पितुः वचनं करोतीति पितृवचनकरः तस्मै पितृवचनकराय = पिता की बात को पूर्ण करने वाले। निर्घृणः = निर्दयी, प्राकृतः = पामर, प्रियम् साहसम् यस्मै सः प्रियसाहसः = परम साहसी।

अन्वयः—(निर्घृण इति) निर्घृणः कृतघ्नः प्राकृतः प्रियसाहसः (किन्तु) भक्तिमान् कश्चित् आगतः कथं तिष्ठतु यातु इति ॥ ४ ॥

व्याख्या—घृणया रहितः निर्घृणः = निर्दयः कृतम् हन्ति इति कृतघ्नः = कीर्तिविनाशी, प्राकृतः = शठ, प्रियसाहसः = अभीष्टसाहसः अनुचितकार्यकरणे रतः इत्यर्थः तथापि भक्तिमान् = भक्तिगुणेन युक्तः कश्चित् आगतः भवद्दर्शनार्थम् आगतः कथम् केन प्रकारेण तिष्ठतु त्वद्दर्शनं प्रतीक्षेत दर्शनायोग्यत्वात् यातु गच्छतु वा ॥ ४ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—तो रथ को रोक दीजिये।
सूत—जो आपकी आज्ञा। (रथ को रोकते हैं)
भरत—(रथ से उतर कर) हे तात ! पिता के वचनों को पालन करनेवाले रामचन्द्र जी को सूचित कर दीजिए—

दयारहित, कृतघ्न, नीच, बुरे कार्यों में साहस दिखानेवाला, फिर भी भक्ति गुण से युक्त कोई व्यक्ति आया है। क्या वह आपकी प्रतीक्षा करे अथवा चला जाय ? ॥ ४ ॥

(ततः प्रविशति रामः सह सीतालक्ष्मणाभ्याम्)

रामः—(आकर्ण्य सहर्षम्) सौमित्रे ! किम् शृणोषि ? अयि विदेहराजपुत्रि ! त्वमपि शृणोषि ?

कस्यासौ सदृशतरः स्वरः पितुर्मे
गाम्भीर्यात् परिभवतीति मेघनादम् ।
यः कुर्वन् मम हृदयस्य बन्धुशङ्कां
सस्नेहः श्रुतिपथमिष्टतः प्रविष्टः ॥ ५ ॥

विवृति——सौमित्रे = सुमित्राया अपत्यम् पुमान् सौमित्रिः तत्सम्बुद्धौ हे सौमित्रे = हे लक्ष्मण, सदृशतरः = अधिक समान, गाम्भीर्यात् = गम्भीरता से ।

अन्वयः—(कस्येति) मे पितुः सदृशतरः कस्य असौ स्वरः गाम्भीर्यात् मेघनादम् परिभवति यः सस्नेहः मम हृदयस्य बन्धुशङ्काम् कुर्वन् इष्टतः श्रुतिपथं प्रविष्टः ॥ ५ ॥

व्याख्या—मे = मम, पितुः सदृशतरः = मत् पितृस्वरतुल्यः कस्य असौ एषः स्वरः वर्णोच्चारणसरणिः गाम्भीर्यात् मेघनादम् = घनगर्जितम् परिभवति इव = अतिशेते इव, यः स्वरः मम हृदयस्य बन्धुशंकाम् = भ्रातृसंदेहं कुर्वन् = जनयन् सस्नेहः प्रेमपूर्णः इष्टतोऽभिलाषित्वात् श्रुतिपथम् = कर्णविवरम् प्रविष्टः श्रुत इत्यर्थः ॥ ५ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

(सीता-लक्ष्मण के साथ राम का प्रवेश)

राम—(सुनकर प्रसन्नता से) लक्ष्मण ! क्या सुन रहे हो ? सीता ! क्या तुम भी सुन रही हो ?

पिता के स्वर के समान ही किसका यह स्वर अपनी गम्भीरता से घन-नाद को भी तिरस्कृत कर रहा है । जो मेरे हृदय में भ्रातृसन्देह उत्पन्न करता है तथा प्रेम से युक्त एवं इष्ट होने कारण कर्णगोचर हो रहा है ॥ ५ ॥

वत्स लक्ष्मण ! दृश्यतां तावत् ।

लक्ष्मणः—यदाज्ञापयत्यार्यः (परिक्रामति) ।

भरतः— अये, कथं न कश्चित् प्रतिवचनं प्रयच्छति ? किन्तु खलु विज्ञातोऽस्मि कैकेय्याः पुत्रो भरतः प्राप्तः ।

लक्ष्मणः—(विलोक्य) अये अयमार्यो रामः । न, न, रूपसादृश्यम् ! (सुमन्त्रं दृष्ट्वा) अये तातः !

सुमन्त्रः—अये ! कुमारो लक्ष्मणः !

भरतः— एवं गुरुरयम् । आर्य ! अभिवादये ।

लक्ष्मणः—एह्येहि, आयुष्मान् भव (सुमन्त्रं वीक्ष्य) तात ! कोऽत्र भवान् ?

विवृति—परिक्रामति = चलते हैं । प्रतिवचनम् = उत्तर । विज्ञातः—(वि + ज्ञा + क्त) जान लिया गया । रूपसादृश्यम् = रूप की समानता । एहि = आओ । वीक्ष्य (वि + ईक्ष + ल्यप्) देखकर ।

हिन्दी रूपान्तर—

वत्स लक्ष्मण ! देखो तो ।

लक्ष्मण—आर्य की जैसी आज्ञा (चलते हैं)

भरत—अरे ! कोई उत्तर क्यों नहीं देता ? क्या आर्य ने समझ लिया कि कैकेयी का पुत्र भरत आया है ?

लक्ष्मण—(देखकर) अरे, ये तो आर्य राम हैं ! नहीं, नहीं, रूप की सदृशता है । (सुमन्त्र को देखकर) अये ! तात !

सुमन्त्र—अरे, क्या कुमार लक्ष्मण हैं ?

भरत—हाँ, यह गुरुजन हैं । आर्य, अभिवादन करता हूँ ।

लक्ष्मण—आओ आओ, चिरजीवी हो । (सुमन्त्र को देखकर) तात, यह कौन हैं ?

सुमन्त्रः—रघोश्चतुर्थोऽयमजात्तृतीयः
पितुः प्रकाशस्य तव द्वितीयः !
यस्यानुजस्त्वं स्वकुलस्य केतो-
स्तस्यानुजोऽयं भरतः कुमारः ॥ ६ ॥

लक्ष्मणः—वत्स ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव।

भरतः— अनुगृहीतोऽस्मि।

लक्ष्मणः—कुमार ! इह तिष्ठ। त्वदागमनमार्य्याय निवेदयामि।

विवृति—प्रकाशस्य = प्रसिद्ध, अनुजः = छोटा भाई, अनुगृहीतः = (अनु + ग्रह् + क्त), आगमनम् (आ + गम् + ल्युट्)

अन्वयः—(रघोरिति) अयम् रघोः चतुर्थः अजात् तृतीयः प्रकाशस्य तव पितुः द्वितीयः। स्वकुलस्य केतोः यस्य त्वम् अनुजः तस्य अनुजः अयं कुमारः भरतः ॥ ६ ॥

व्याख्या—अयम् = पुरतो वर्तमानः रघोः चतुर्थः वंशगणनायामित्यर्थः तत्प्रपौत्रः, अजात् तृतीयः = अजपौत्रः, प्रकाशस्य = प्रसिद्धस्य पितुः महाराजस्य दशरथस्य पुत्रः स्वकुलस्य केतोः निजकुलभूषणस्य यस्य रामस्य त्वम् अनुजः तस्यैवानुजोऽयं भरतः कुमारः अस्ति ॥ ६ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

सुमन्त्र—यह रघु के चतुर्थ अर्थात् प्रपौत्र, अज के तृतीय अर्थात् पौत्र, तुम्हारे जगत् प्रसिद्ध पिता दशरथ के द्वितीय अर्थात् पुत्र तथा अपने कुल के केतु जिन राम के तुम अनुज हो उन्हीं के अनुज कुमार भरत हैं ॥ ६ ॥

लक्ष्मण—वत्स ! तुम्हारा कल्याण हो। चिरजीवी रहो।

भरत—मैं अनुगृहीत हुआ।

लक्ष्मण—कुमार ! यहाँ ठहरो ! तुम्हारे आगमन की सूचना आर्य को दे दूँ।

भरतः—आर्य ! शीघ्रं निवेद्यताम् ।

लक्ष्मणः—बाढम् (उपेत्य) जयत्वार्यः, आर्य !

अयं ते दयितो भ्राता भरतो भ्रातृवत्सलः ।
संक्रान्तं यत्र ते रूपमादर्शे इव तिष्ठति ॥ ७ ॥

रामः—वत्स लक्ष्मण ! किमेवं भरतः प्राप्तः ?

लक्ष्मणः—आर्य ! अथ किम् । प्रविशतु कुमारः ।

रामः—वत्स ! गच्छ सत्कृत्य शीघ्रं प्रवेश्यताम् कुमारः ।
अथवा तिष्ठ त्वम् ।

विवृति—निवेद्यताम् = निवेदन कर दीजिए। दयितः = प्रिय, संक्रान्तम् = पड़ गया है, आदर्शे = दर्पण में, प्राप्तः = (प्र + आप् + क्त) उपस्थित ।

अन्वयः—(अयमिति) अयं ते दयितः भ्रातृवत्सलः भ्राता भरतः यत्र आदर्शे इव संक्रान्तं ते रूपम् तिष्ठति ॥ ७ ॥

व्याख्या—अयम् ते = तव, दयितः = प्रियः भ्रातृप्रियः भरतः अस्ति, यत्र = यस्मिन् भरते आदर्शे इव = दर्पणे इव ते = भव रूपम् = आकृतिः, संक्रान्तम् = समधिगतं तिष्ठति ॥ ७ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—आर्य ! जल्दी ही सूचना दे दीजिए ।

लक्ष्मण—अच्छा ! (जाकर) आर्य की जय हो; आर्य ! यह आपके प्रिय तथा भ्रातृस्नेही भरत आये हैं, जिनमें दर्पण की भाँति आपकी आकृति स्पष्ट झलकती है ॥ ७ ॥

राम—वत्स लक्ष्मण ! क्या सचमुच भरत आये हैं ?

लक्ष्मण—आर्य ! और क्या ! क्या कुमार प्रवेश करें ?

वत्स, जाओ, सत्कार सहित शीघ्र ही कुमार भरत को ले आओ । अथवा ठहरो ।

इयं स्वयं गच्छतु मानहेतोर्मातेव भावं तनये निवेश्य ।
तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा हर्षास्रमासारमिवोत्सृजन्ती ॥ ८ ॥

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।

(उपसर्पति)

सुमन्त्रः—अये ! वधूः ।

विवृति—सत्कृत्य = सत्कार करके, तनये = पुत्र में, निवेश्य = (नि + विश् + ल्यप्) स्थापित करके, तुषारेण पूर्णे उत्पलपत्रे इव नेत्रे यस्याः सा तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा = ओस से पूर्ण कमलपत्र के समान नेत्रों वाली। हर्षास्रम् = आनन्द के आँसू, उत्सृजन्ती = (उत् + सृज् + शतृ + ङीप्) छोड़ती हुई।

अन्वयः—इयमिति। तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा आसारमिव हर्षास्रम् उत्सृजन्ती इयं माता तनये इव भावम् निवेश्य मानहेतोः स्वयम् गच्छतु ॥ ८ ॥

व्याख्या–तुषारपूर्णोत्पलपत्रनेत्रा = हिमावृतकुवलयदललोचना, आसारम् = धारासम्पातमिव, हर्षास्रम् = आनन्दाश्रुप्रवाहम् , उत्सृजन्ती = वर्षयन्ती इयम् सीता माता इव तनये = पुत्रे भावम् = वात्सल्यं निवेश्य संस्थाप्य मानहेतोः = सत्कारार्थम् स्वयं गच्छतु। माता कुतश्चिदागतं पुत्रं आनन्दाश्रुभिः आर्द्रयत्येवेत्यर्थः ॥ ८ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

ओस से पूर्ण कमलदल के समान नेत्रों वाली, धारा के समान आनन्दाश्रु बहाती हुई सीता पुत्र के प्रति होने वाले वात्सल्य को हृदय में रखकर स्वयं कुमार के सत्कार के लिए जाँय।

सीता—आर्यपुत्र की जैसी आज्ञा।

(जाती है)

सुमन्त्र—अये ! वधू सीता है !

भरतः—अये इयमत्र जनकराजपुत्री ? आर्ये अभिवादये ।

सीता—वत्स, चिरंजीव ।

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

सीता—एहि वत्स ! भ्रातृमनोरथं पूरय ।

सुमन्त्रः—प्रविशतु कुमारः ।

भरतः—एवमस्तु (राममुपगम्य) आर्य ! अभिवादये, भरतोऽहमस्मि ।

रामः—(सहर्षम्) एह्येहि इक्ष्वाकुकुमार !

स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।

वक्षः प्रसारय कवाटपुटप्रमाण—

मालिङ्ग मां सुविपुलेन भुजद्वयेन ।

विवृति—अभिवादये = प्रणाम करता हूँ । वक्षः = हृदय, कवाटपुटवत् प्रमाणं यस्य तत् कवाटपुटप्रमाणम् = किवाड़ की जोड़ी के समान चौड़े,

अन्वयः—कवाटपुटप्रमाणम् वक्षः प्रसारय, सुविपुलेन भुजद्वयेन माम् आलिङ्ग, शरदिन्दुकल्पम् इदम् आननम् उन्नामय । व्यसनदग्धम् इदं शरीरं प्रह्लादय ॥ ८ ॥

व्याख्या—कवाटपुटप्रमाणम् = कपाटोदरसदृशम् वक्षः = उरः, प्रसारय = विस्तारय, सुविपुलेन = विशालेन भुजद्वयेन माम् आलिङ्ग = परिष्वजस्व, शरदिन्दुतुल्यम् = शरच्चन्द्रतुल्यम् इदमाननम् = मुखम् उन्नामय उन्नतं कुरु । व्यसनदग्धम् = सन्तापभस्मीभूतम् इदं शरीरम् प्रह्लादय = शिशिरय ।

भरत—अरे ! यह आर्या जनकराजकुमारी हैं ? आर्ये ! अभिवादन करता हूँ ।

सीता—वत्स ! चिरंजीवी हो ।

भरत—अनुगृहीत हुआ ।

सीता—आओ वत्स ! भाई के मनोरथ को पूर्ण करो ।

उन्नामयाननमिदं शरदिन्दुकल्पं
प्रह्लादय व्यसनदग्धमिदं शरीरम् ॥ ८ ॥ 70

भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

सुमन्त्रः—(उपेत्य) जयत्वायुष्मान् ।

रामः—हा तात !

सुमन्त्रः—(सशोकम्)

नरपतिनिधनं भवत्प्रवासं भरतविषादमनाथतां कुलस्य ॥
बहुविधमनुभूय दुष्प्रसह्यं गुण इव बह्वपराद्धमायुषा मे ॥९॥ 63

अन्वयः—(नरेति) नरपतिनिधनम् भवत्प्रवासम् भरतविषादम् कुलस्य अनाथताम् बहुविधम् दुष्प्रसह्यम् अनुभूय मे आयुषा गुणे इव बहु अपराद्धम् ॥ ९ ॥

व्याख्या—नरपतिनिधनम् = महाराजमरणम्, भवत्प्रवासम् = भवद्-विदेशगमनम्, भरतविषादम् = भरतक्लेशः, कुलस्य अनाथताम् = अशरणताम्, एवम् बहुविधम् = अनेकप्रकारम्, दुष्प्रसह्यम् = कृच्छ्रसोढव्यम्, दुःखम् अनुभूय मे = मम, आयुषा = जीवितेन गुण इव गुणेन साकम्, बहु-अपराद्धम् = महान् अपकारः कृतः ॥ ९ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

सुमन्त्र—कुमार प्रवेश करें ।

भरत—ऐसा ही हो (राम के पास जाकर) आर्य ! अभिवादन करता हूँ । मैं भरत हूँ ।

राम—आओ-आओ इक्ष्वाकुकुमार ! कल्याण हो । चिरजीवी हो । कपाट के समान विशाल वक्षःस्थल को फैलाओ । विशाल दोनों भुजाओं से आलिंगन करो । शरद् ऋतु के चन्द्र के समान मुख को उठाओ और दुःख से जलते हुए मेरे शरीर को शीतल करो ॥ ८ ॥

भरत—अनुगृहीत हुआ ।

सुमन्त्र—(पास जाकर) जय हो आयुष्मान् की ।

राम—हा तात !

भरतः—आर्य !

इह स्थास्यामि देहेन तत्र स्थास्यामि कर्मणा ।
नाम्नैव भवतो राज्यं कृतरक्षं भविष्यति ॥ १० ॥

रामः—वत्स कैकेयीमातः ! मा मैवम् ।

सुमन्त्रः—अथेदानीम् अभिषेकोदकम् क तिष्ठतु ।

रामः—यत्र मे मात्राभिहितं तत्रैव तावत् तिष्ठतु ।

विवृति—इह = यहाँ, कृतरक्षम् = (कृता रक्षा यस्य तत्) रक्षा सहित । अभिषेकस्य उदकम् अभिषेकोदकम् = अभिषेक का जल । अभिहितम् = (अभि + धा + क्त) कहा । व्रणे = घाव पर, प्रहर्तुम् = (प्र + हृ + तुमुन्) = मारना । अतिकरुणम् = बहुत दुःख से ।

अन्वयः—इह देहेन स्थास्यामि तत्र कर्मणा स्थास्यामि । भवतः नाम्नैव राज्यम् कृतरक्षम् भविष्यति ॥ १० ॥

व्याख्या—इह भवन्निवासेन पवित्रिते वने शरीरेण देहेनैव स्थास्यामि, तत्र अयोध्यायाम् कर्मणा प्रबन्धेन स्थास्यामि । भवन्नाम्नैव = भवन्नामप्रभावेणैव, राज्यम् सम्पूर्णं राज्यम् कृतरक्षम् = रक्षितम् भविष्यति ॥ १० ॥

हिन्दी रूपान्तर—

सुमन्त्र—(शोक से) राजा की मृत्यु, आपका वनवास, भरत का दुःख, कुल का अशरण होना, इस प्रकार के अनेक दुःखों का अनुभव कराकर हमारी लम्बी आयु ने गुणों के साथ महान् दोष भी प्रदान किये ॥ ९ ॥

भरत—आर्य ! यहाँ मैं शरीर से रहूँगा । अर्थात् आपके चरणों में ही पड़ा रहना चाहता हूँ । वहाँ मेरा सारा प्रबन्ध रहेगा । आपके नाम से ही राज्य की रक्षा रहेगी ॥ १० ॥

राम—वत्स कैकेयी नन्दन ! ऐसा न कहो ।

सुमन्त्र—तो इस समय अभिषेक किसका किया जाय ?

राम—मेरी माता ने जिसके लिये कहा है, उसी का अभिषेक हो ।

भरतः—प्रसीदत्वार्यः। आर्य ! अलमिदानीम् व्रणे प्रहर्त्तुम्।

सीता—आर्यपुत्र ! अतिकरुणं मन्त्रयते भरतः। किमिदानीम् आर्यपुत्रेण चिन्त्यते ?

रामः—मैथिलि !

Important 1964

तं चिन्तयामि नृपतिं सुरलोकयातं
येनायमात्मजविशिष्टगुणो न दृष्टः।
ईदृग्विधं गुणनिधिं समवाप्य लोके
धिग् भो विधेर्यदि बलं पुरुषोत्तमेषु ॥ ११ ॥ ८१

अन्वयः—सुरलोकयातम् तं नृपतिं चिन्तयामि येन आत्मजविशिष्टगुणः न दृष्टः, लोके ईदृग्विधं गुणनिधिं समवाप्य यदि पुरुषोत्तमेषु विधेर्बलम् भोः धिक् ॥ ११ ॥

व्याख्या—सुरलोकयातम् = स्वर्गगतम् तम् लोकप्रसिद्धं नृपतिं = महाराजम् पितरं चिन्तयामि = विचारयामि, येन पित्रा जनकेन आत्मजविशिष्टगुणः = पुत्रोत्तमगुणः न दृष्टः = अवलोकितः, लोके = संसारे ईदृग्विधम् = एतत्प्रकारकम् भरतसदृशं, गुणनिधिम् = गुणागारम् पुत्रं समवाप्य = लब्ध्वा, पुरुषोत्तमेषु = मानवश्रेष्ठेषु मातृपितृसदृशेषु यदि विधेः = भाग्यस्य, बलम् = प्रभुत्वं तर्हि धिग् भोः।

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—आर्य, आप मुझ पर दया कीजिये। घाव पर प्रहार न कीजिये।

सीता—आर्यपुत्र ! भरत बहुत करुणापूर्ण बातें कर रहे हैं। आप इस समय क्या सोच रहे हैं ?

राम—सीता !

मुझे पिता के स्वर्ग जाने का शोक है जिन्होंने उत्तम गुणवाले पुत्र भरत को नहीं देखा। यदि ऐसे पुत्र को पाकर भी बड़े-बड़े महानुभावों पर भाग्य का प्रभाव पड़ जाता है तो धिक्कार है उस भाग्य को।

भरतः—यावत् भविष्यति भवन्नियमावसानं
तावद् भवेयमिह ते नृप पादमूले ।
रामः—मैवं नृपः स्वसुकृतैरनुयातु सिद्धिं
मे शापितो न परिरक्षसि चेत् स्वराज्यम् ।। १२ ।।

भरतः—हन्त ! अनुत्तरमभिहितम् । भवतु, समयतस्ते राज्य परिपालयामि ।

विवृति—भवतः नियमस्य अवसानं भवन्नियमावसानम्=आपके व्रत का अन्त । यावत्=जब तक, तावत्=तब तक, स्वसुकृतैः=अपने पुण्य से ।

अन्वयः—यावद् भवन्नियमावसानं भविष्यति तावद् हे नृप ! इह ते पादमूले भवेयम् । मा एवम्, नृपः स्वसुकृतैः सिद्धिं अनुयातु, मे शापितः चेत् स्वराज्यम् न परिरक्षसि ।। १२ ।।

व्याख्या—यावत्=यावन्तं कालं व्याप्य भवतो नियमस्य वनवासस्य अवसानं समाप्तिः भविष्यति, तावत्=तावन्तं कालं व्याप्य इह पादस्य मूलम् तस्मिन् त्वदाश्रित इत्यर्थः भवेयम् अहमपि भवता सह अत्रैव वसिष्यामि । (श्लोकार्धे रामोक्तिः) मा एवम् अत्र न वसेः राज्यरक्षणं त्वया कर्तव्यम् इत्यर्थः । नृपः=पितृचरणः, स्वसुकृतैः=स्वपुण्यैः, सिद्धिं=फलोदयम्, अनुयातु=प्राप्नोतु । मे=मम, शापितः अभिशप्तः भविष्यसि चेत्=यदि स्वराज्यम् न परिरक्षसि=परिपालयसि ॥ १२ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—जब तक आपके वनवास का अन्त नहीं होता, तब तक मैं आपके चरणों में पड़ा रहना चाहता हूँ ।

राम—ऐसा नहीं, पिता जी तो अपने सुकर्मों की सिद्धि प्राप्त करें । अर्थात् स्वर्ग भोगें । हाँ, यदि तुम स्वराज्य की रक्षा नहीं करते तो तुम्हें मेरी शपथ है ।। १२ ।।

भरत—हा ! निरुत्तर बात आर्य ने कह दी । अच्छा, कुछ शर्त पर मैं आपके राज्य की रक्षा करूँगा ।

रामः—वत्स ! कः समयः ?

भरतः—मम हस्ते निक्षिप्तं तव राज्यं चतुर्दशवर्षान्ते प्रतिग्रहीतुम् इच्छामि ।

रामः—एवमस्तु !

भरतः—आर्य ! अन्यमपि वरं हर्तुमिच्छामि ।

रामः—वत्स ! किमिच्छसि ?

भरतः—पादोपभुक्ते तव पादुके मे एते प्रयच्छ प्रणताय मूर्ध्ना ।
यावद् भवानेष्यति कार्यसिद्धिं तावत् भविष्याम्यनयो-
र्विधेयः ॥ १३ ॥

विवृति—पादोपभुक्ते, पादाभ्याम् उपभुक्ते = चरणों से सेवित,

अन्वयः—मूर्ध्ना प्रणताय मे पादोपभुक्ते एते तव पादुके प्रयच्छ याावद् भवान् कार्यसिद्धिम् एष्यति तावत् अनयोः विधेयः भविष्यामि ॥ १३ ॥

व्याख्या—मूर्ध्ना = शिरसा, प्रणताय = प्रणामं कृतवते, मे = मह्यम्, पादोपभुक्ते = चरणसेविते, एते = इमे तव पादुके काष्ठरचिते पादत्राणे प्रयच्छ = अर्पय । यावत् = यावन्तं कालं भवान् कार्यसिद्धिम् एष्यति गमिष्यति तावत् अहम् अनयोः पादुकयोः विधेयः = वश्यः भविष्यामि ॥ १३ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

राम—वत्स भरत ! क्या शर्त है ?

भरत—मैं चाहता हूँ कि मुझे दिये गये राज्य को चौदह वर्ष पश्चात् आप ले लें ।

राम—ऐसा ही हो ।

भरत—आर्य ! मैं दूसरा वरदान भी चाहता हूँ ।

राम—वत्स ! क्या चाहते हो ?

भरत—अपने चरणों से सेवित इन पादुकाओं को आप मुझ विनत को

सीता—आर्यपुत्र ! ननु दीयते प्रथमयाचनं भरताय ?
रामः—तथास्तु, वत्स ! गृह्यताम् ।
भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि !
रामः—वत्स ! कैकेयीमातः ! राज्यं नाम मुहूर्त्तमपि नोपेक्षणीयम् ।
तस्मादद्यैव प्रतिनिवर्त्तताम् कुमारः !
सीता—हन्त ! अद्यैव गमिष्यति कुमारः ?
रामः—अलमतिस्नेहेन । अद्यैव विजयाय प्रतिनिवर्ततां कुमारः ।
भरतः—आर्य ! अद्यैवाहं गमिष्यामि ।
सुमन्त्रः—आयुष्मन् ! मयेदानीं किं कर्त्तव्यम् ?

विवृति—प्रथमं याचनम् इति प्रथमयाचनम् = (याच् + ल्युट्)• 'पहली माँग । न उपेक्षणीयम् = उपेक्षा नहीं करनी चाहिये । अद्यैव = आज ही ।'

हिन्दी रूपान्तर—

दे दीजिये । जब तक आपकी कार्यसिद्धि अर्थात् व्रत का अन्त न हो जाय तब तक मैं इन्हीं का वशवर्ती रहूँगा ।

सीता—आर्यपुत्र ! भरत की प्रथम माँग पूर्ण कर रहे हैं ?
राम—ऐसा ही होगा । वत्स ! ग्रहण करो ।
भरत—मैं अनुगृहीत हुआ ।
राम—वत्स कैकेयी नन्दन ! राज्य के प्रति क्षण भर भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये । अतः आज ही तुमको जाना चाहिये ।
सीता—क्या आज ही कुमार चले जायँगे ?
राम—अधिक स्नेह ठीक नहीं । आज ही विजयार्थ चला जाना चाहिये ।
भरत—आर्य ! मैं आज ही जाऊँगा ।
सुमन्त्र—आयुष्मन् ! अब मुझे क्या करना होगा ?

रामः—तात ! महाराजवत् परिपाल्यतां कुमारः ।
सुमन्त्रः—यदि जीवामि तावत् प्रयतिष्ये ।
रामः—वत्स ! आरुह्यतां ममाग्रतो रथः ।
भरतः—यदाज्ञापयत्यार्यः ।

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति चतुर्थोऽङ्कः

विवृति—अद्यैवाहम् = (अद्य + एव + अहम्) आज ही मैं । कर्तव्यम् = (कृ + तव्य) करना चाहिये ।

हिन्दी रूपान्तर—

राम—तात ! महाराज के समान ही कुमार का पालन होना चाहिये ।
सुमन्त्र—यदि जीवित रहूँगा तो प्रयत्न करूँगा ।
राम—वत्स ! मेरे सामने ही रथ पर बैठो ।
भरत—आर्य की जैसी आज्ञा ।

(सबका प्रस्थान)

इति चतुर्थ अंक

पञ्चमोऽङ्कः

(सीता वृक्षान् सिञ्चति, ततः प्रविशति रामः)

रामः—(विलोक्य) अये ! इयं वैदेही ! भोः कष्टम् ।

योऽस्याः करः श्राम्यति दर्पणेऽपि
स नैति खेदं कलशं वहन्त्याः ।
कष्टं वनं स्त्रीजनसौकुमार्यं,
समं लताभिः कठिनीकरोति ॥ १ ॥

(उपेत्य) मैथिलि ! अपि तपो वर्धते ?

विवृति—श्राम्यति = थक जाता है । समम् = साथ ।

अन्वयः—य अस्याः करः दर्पणेऽपि श्राम्यति । सः कलशं वहन्त्याः खेदं न एति । कष्टम् ! वनं लताभिः समं स्त्रीजनसौकुमार्यं कठिनीकरोति ॥ १ ॥

व्याख्या—यः सुकोमलः सीतायाः करः = पाणिः, दर्पणे = आदर्शे अपि उत्थापनक्लेशत्वात् श्राम्यति . श्रमम् अनुभवतिस्म । इदानीम् सेकार्थं कलशम् घटं वहन्त्याः सः करः खेदं श्रमं, न एति = नाप्नोति । कष्टम् = शोकावसरः यत् वनं विविधक्लेशाश्रयत्वात् लताभिः समम् = सार्धं, स्त्रीजनसौकुमार्यम् = नारीकोमलताम्, कठिनीकरोति = दृढतां नयति ॥ १ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

(सीता वृक्षों को सींचती है, राम का प्रवेश)

राम—(देखकर) अरे ! यह सीता है ! हा ! महान् कष्ट !

जो हाथ दर्पण उठाने में भी थक जाता था, आज वही घट उठाने से भी नहीं थकता है । दुःख है कि वन लताओं के साथ स्त्रियों की कोमलता को भी कठिनता में बदल देता है ॥ १ ॥

(पास जाकर) सीता क्या तप निर्विघ्न चल रहा है ?

सीता—हम् ! आर्यपुत्रः ! जयतु आर्यपुत्रः ।
रामः—यदि ते नास्ति धर्मविघ्नम्, आस्यताम् !
सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति । (उपविशति)
रामः—मैथिलि ! प्रतिवचनार्थिनीम् इव त्वां पश्यामि ।
सीता—शोकशून्यस्य इवार्यपुत्रस्य मुखरागः ।
रामः—मैथिली ! श्वस्तत्रभवतस्तातस्यानुसंवत्सरश्राद्धविधिः ।

फलानि दृष्ट्वा दर्भेषु स्वहस्तरचितानि नः ।
स्मारितो वनवासं च तातस्तत्रापि रोदिति ॥ २ ॥

विवृति—शोकेन शून्यं हृदयं यस्य सः तस्य शोकशून्यहृदयस्य = शोक के कारण शून्य हृदय वाले, श्वः = कल । दर्भेषु = कुशों पर । स्वेन हस्तेन रचितानि स्वहस्तरचितानि = अपने हाथ से रक्खे हुए ।

अन्वयः—दर्भेषु नः स्वहस्तरचितानि फलानि दृष्ट्वा तातः वनवासं स्मारितः तत्रापि रोदिति ॥ २ ॥

व्याख्या—दर्भेषु = कुशेषु न तु सुवर्णपात्रेषु, नः = अस्माकम्, स्वहस्त-रचितानि = निजकरस्थापितानि फलानि न तु बहुमूल्यानि, दृष्ट्वा = विलोक्य, तातः = पिता दशरथः अस्माकं वनवासं स्मारितः तत्रापि स्वर्गेऽपि रोदिति = विलापं करिष्यति ॥ २ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—हा ! आर्यपुत्र ! आर्यपुत्र की जय हो ।
राम—यदि तुम्हारे धर्म में कोई बाधा न पड़े तो बैठ जाओ ।
सीता—आर्यपुत्र की जैसी आज्ञा (बैठती है)
राम—ज्ञात होता है, तुम कुछ पूछना चाहती हो ।
सीता—शोक से पीड़ित आपका मुख सूखा हुआ है ।
राम—सीता ! कल पिताजी का वार्षिक श्राद्ध है ।

हा ! कुश के ऊपर हमारे हाथ से दिये फल को देखकर पिता

(ततः प्रविशति परिव्राजकवेषो रावणः)

रावणः—एषः भोः ।

नियतमनियतात्मा रूपमेतद् गृहीत्वा
खरवधकृतवैरं राघवं वञ्चयित्वा ।
स्वरपदपरिहीणां हव्यधारामिवाहं
जनकनृपसुतां तां हर्तुकामः प्रयामि ॥ ३ ॥65

विवृति—नियतम् = जितेन्द्रिय, अनियतः आत्मा यस्य सः अनियतात्मा = अजितेन्द्रिय । खरस्य वधेन कृतम् वैरं येन सः खरवधकृतवैरः = खर राक्षस के वध से शत्रुता करने वाला । स्वरेण पदेन च परिहीणां स्वरपदपरिहीणाम् = स्वर पद से रहित । हव्यधाराम् = घी की धारा ।

अन्वयः—अनियतात्मा अहम् एतद् रूपं गृहीत्वा नियतम् खरवधकृतवैरं राघवं वञ्चयित्वा तां जनकनृपसुतां स्वरपदपरिहीणां हव्यधारामिव हर्तुकामः प्रयामि ॥ ३ ॥

व्याख्या—अनियतात्मा = अजितेन्द्रियः अहम् एतद् रूपम् परिव्राजकवेषं गृहीत्वा = धारयित्वा, नियतम् = जितेन्द्रियं, खरवधकृतवैरम् = खरदूषणादिवधविहितापराधम्, राघवम् = रामं, वञ्चयित्वा = प्रतार्य, ताम् राघवरहितां सीताम् स्वरपदपरिहीणाम् = अनभिमन्त्रिताम्, हव्यधाराम् = घृताहुतिम् इव, हर्तुकामः = हरणेच्छुः, प्रयामि = गच्छामि । स्वरपदरहितं हव्यं राक्षसा एव गृह्णन्ति ॥ ३ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

जी को हम सब के वनवास का स्मरण हो जायगा । वे स्वर्ग में भी विलाप करेंगे ॥

(संन्यासी के वेष में रावण का प्रवेश)

रावण—यह मैं—

जितेन्द्रिय न होकर भी ऐसा कपट रूप धारण करके खरदूषण का वध करने वाले जितेन्द्रिय राम को ठगकर उस जनकपुत्री सीता को

(आश्रमपदद्वारमुपसृत्य) अहमतिथिः ! कोऽत्र भोः ।

रामः—स्वागतमतिथये (विलोक्य) अये ! भगवन्, अभिवादये ।

रावणः—स्वस्ति ।

रामः—भगवन् ! एतदासनास्यताम् । मैथिलि ! पाद्यमानय भगवते ।

रावणः—वाचानुवृत्तिः खल्वतिथिसत्कारः । पूजितोऽस्मि, आस्यताम् ।

रामः— बाढम् । कथमनुग्राह्योऽयं जनः ?

रावणः—भोः काश्यपगोत्रोऽस्मि, साङ्गोपाङ्गं वेदं श्राद्धकल्पादिकं चाधीये ।

विवृति—आस्यताम् = बैठिये, वाचानुवृत्तिः = प्रियवाणी का प्रयोग । बाढम् = अच्छा, निर्वपनक्रियाकाले = श्राद्ध के अवसर पर, शृङ्गे = चोटी पर ।

हिन्दी रूपान्तर—

हरने की इच्छा से वैसे ही चल रहा हूँ जिस प्रकार स्वर और पद से रहित हव्य को ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥

(आश्रम के द्वार पर पहुँचकर) मैं अतिथि हूँ । कौन है यहाँ ?

राम—अतिथि का स्वागत है (देखकर) अरे ! आप हैं ! अभिवादन करता हूँ ।

रावण—कल्याण हो ।

राम—भगवन् ! इस आसन पर बैठ जाइये । सीता ! आपके लिए पाद्यादिक ले आओ ।

रावण—मधुर भाषण ही अतिथिसत्कार है । मैं पूजित हो चुका । आप बैठिये ।

राम—अच्छा ! तो किस प्रकार मैं अनुगृहीत हो सकूँगा ।

रावण—देखिये—मैं कश्यप गोत्र का हूँ । मैंने साङ्गोपाङ्ग वेद और श्राद्धकल्प आदि का अध्ययन किया है ।

रामः—कथं श्राद्धकल्पमिति ?

रावणः—अलं परिहृत्य पृच्छतु भवान् ?

रामः—निर्वपनक्रियाकालं केन पितॄँस्तर्पयामि ?

रावणः—हिमवतः सप्तमे शृंगे काञ्चनपार्श्वा नाम मृगाः तैः महर्षयः श्राद्धान्यभिवर्धयन्ति। परं न ते मानुषैर्दृश्यन्ते।

रामः—भगवन्! किम् हिमवति प्रतिवसन्ति ?

रावणः—अथ किम्।

रामः—तेन हि पश्यतु भवान्।

रावणः—(स्वगतम्) अये विद्युत्सम्पात इव दृश्यते! (प्रकाशम्) कौशल्यामातः! इहस्थमेव भवन्तं पूजयति हिमवान्। एष काञ्चनपार्श्वः।

विवृति—विद्युत्सम्पातः = बिजली का गिरना। वृद्धिः = माहात्म्य।

हिन्दी रूपान्तर—

राम—क्या श्राद्धकल्प ?

रावण—हाँ! संकोच न कीजिये, पूछिये।

राम—भगवन्! श्राद्ध के समय किन सामग्रियों से पितरों का तर्पण होता है ?

रावण—हिमालय के सातवें शृंग पर काञ्चनपार्श्व नाम के मृग हैं। उन्हीं के द्वारा महर्षि श्राद्ध करते हैं, किन्तु वे मनुष्यों को नहीं दिखायी देते।

राम—भगवन्! क्या हिमालय पर ही रहते हैं ?

रावण—और क्या ?

राम—तो आप देखिये।

रावण—(स्वगत) अरे! बिजली की सी चमक हो रही है। (प्रकट) कौशल्यानन्दन! तुम्हारे यहीं रहते हुए हिमालय ने सत्कार किया है। यह है काञ्चनमृग।

रामः—भगवतो वृद्धिरेषा ।

सीता—दिष्ट्या आर्यपुत्रो वर्धते ।

रामः—मैथिलि ! लक्ष्मणं ब्रूहि—

सीता—आर्यपुत्र ! ननु तीर्थयात्रातः उपावर्तमानं कुलपतिम् प्रत्युद्गच्छ इति सन्दिष्टः सौमित्रिः ।

रामः—तेन हि अहमेव यास्यामि ।

सीता—आर्यपुत्र ! अहं किं करिष्यामि ।

रामः—शुश्रूषस्व भगवन्तम् ।

सीता—यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।

(निष्क्रान्तो रामः)

सीता—यावद् उटजं प्रविशामि ।

रावणः—(स्वरूपं गृहीत्वा) सीते ! तिष्ठ तिष्ठ ।

विवृति—उपावर्तमानम् = आते हुए ।

हिन्दी रूपान्तर—

राम—यह आपकी महिमा है ।

सीता—धन्य भाग्य ! आपका बड़ा प्रभाव है ।

राम—सीता ! लक्ष्मण से कह दो—

सीता—आर्यपुत्र ! आपने ही तो लक्ष्मण को तीर्थयात्रा से लौटे हुए गुरु का स्वागत करने का आदेश दिया है ।

राम—तो मैं ही जाऊँगा ।

सीता—आर्यपुत्र ! मैं क्या करूँगी ?

राम—तुम, आप की सेवा करना ।

सीता—आर्यपुत्र की जैसी आज्ञा ।

(राम का प्रस्थान)

सीता—अच्छा, मैं भी कुटी में जाऊँ ।

रावण—(अपने रूप में होकर) सीता ! ठहरो ! ठहरो ।

सीता—(सभयम्) हम् ! क इदानीमयम् ।

रावणः—किं न जानीषे ?

सीता—हं रावणो नाम (प्रतिष्ठते)

रावणः—आः ! रावणस्य चक्षुर्विषयमागता क यास्यसि ?

(बलाद् गृहीत्वा अपकर्षति)

सीता—आर्यपुत्र ! परित्रायस्व, परित्रायस्व । (उभौ गच्छतः)

(ततः प्रविशतः वृद्धतापसौ)

उभौ—परित्रायन्तां परित्रायन्तां भवन्तः ।

प्रथमः—एषा खलु तत्र भवती सीता ।

विवृति—उटजम् = कुटी, चक्षुर्विषयम् = दृष्टिगोचर, क्व = कहाँ, परित्रायस्व = रक्षा कीजिये ।

हिन्दी रूपान्तर—

सीता—(भयपूर्वक) अरे अब यह क्या हो गया ?

रावण—क्या तुम नहीं जानती !

सीता—अरे ! रावण ? (चल देती है)

रावण—आः ! रावण की दृष्टि में पड़कर कहाँ जाओगी ?

(बलपूर्वक पकड़कर घसीटता है)

सीता—आर्यपुत्र ! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ।

(दोनों का प्रस्थान)

(दो वृद्ध तपस्वियों का प्रवेश)

दोनों—आप लोग रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए ।

प्रथम—अरे वह आर्या सीता है ।

विचेष्टमानेव भुजङ्गमाङ्गना विधूयमानेव च पुष्पिता लता।
प्रसह्य पापेन दशाननेन तपोवनात् सिद्धिरिवापनीयते ॥ ४ ॥

द्वितीयः—"मयि स्थिते क्व यास्यसि" इति रावणमाहूय जटायुः गगनमुत्पतितः।

प्रथमः—एतदन्तरिक्षे प्रवृत्तं युद्धम्।

द्वितीयः—हा धिक्! पतितो जटायुः।

विवृति—विचेष्टमाना = प्रयत्न करती हुई। भुजङ्गमाङ्गना = सर्पिणी। प्रसह्य = हठात्। आहूय = बुलाकर, अन्तरिक्षे = आकाश में।

अन्वयः—विचेष्टमाना भुजङ्गमाङ्गना इव विधूयमाना पुष्पिता लता इव सा पापेन दशाननेन तपोवनात् सिद्धिः इव प्रसह्य नीयते ॥४॥

व्याख्या—विचेष्टमाना विपत्तिं दूरीकर्तुं प्रयतमाना भुजङ्गमाङ्गना सर्पिणी इव, विधूयमाना = कम्प्यमाना, पुष्पिता = पुष्पमयी लता वल्ली इव, सा आर्या सीता पापेन = दुराचारेण, दशाननेन = रावणेन, तपोवनात् सिद्धिः इव = तपः फलसम्पदिव, प्रसह्य = हठात्, नीयते = अन्यत्र प्राप्यते ॥ ४ ॥

दुःख से छूटने की चेष्टा करने वाली सर्पिणी की भाँति, कँपाई हुई फूलों वाली लता की तरह आर्या सीता को पापी रावण तपोवन से सिद्धि की तरह उठा ले जा रहा है ॥ ४ ॥

द्वितीय—"मेरे रहते हुए कहाँ जायगा" इस प्रकार रावण को सम्बोधित करके जटायु आकाश में उड़े जा रहे हैं।

प्रथम—अरे! देखो आकाश में भयंकर युद्ध हो रहा है।

द्वितीय—हा! जटायु गिर पड़े।

प्रथमः—काश्यप ! आगम्यताम्, इमं वृत्तान्तं तत्र भवते राघवाय निवेदयिष्यावः ।

द्वितीयः—बाढम् ।

(निष्क्रान्तौ)

(इति पञ्चमोऽङ्कः)

प्रथम—काश्यप ! आओ, यह समाचार आर्य रामचन्द्र से कह दें ।

द्वितीय—अच्छा ?

(दोनों का प्रस्थान)

इति पञ्चम अङ्क

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति भरतः प्रतीहारी च)

भरतः—विजये एवमुपगतस्तत्रभवान् सुमन्त्रः ?

काञ्चुकीयः—(उपगम्य) जयतु कुमारः ।

भरतः—अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्तते तत्र भवान् सुमन्त्रः ?

काञ्चुकीयः—असौ काञ्चनतोरणद्वारे……

भरतः—तेन हि शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

काञ्चुकीयः—यदाज्ञापयति कुमारः । (निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति सुमन्त्रः प्रतीहारी च)

सुमन्त्रः—कष्टम् भोः कष्टम् ।

प्रतीहारी—(सुमन्त्रमुद्दिश्य) एत्वेत्वार्यः, एष भर्ता, उपसर्पत्वार्यः ।

विवृति—उपगतः = प्राप्त हुए, काञ्चनतोरणद्वारे = सिंहद्वार ।

हिन्दी रूपान्तर—

(पुनः भरत और प्रतिहारी का प्रवेश)

भरत—विजये ! क्या आर्य सुमन्त्र लौट आये ?

कञ्चुकी—(पास जाकर) कुमार की जय हो ।

भरत—आर्य सुमन्त्र किस स्थान पर हैं ।

कञ्चुकी—वे मुख्य द्वार पर खड़े हैं ।

भरत—तो जल्दी ही उन्हें ले आइये ।

कञ्चुकी—कुमार की जो आज्ञा (निकल जाते हैं)

(सुमन्त्र और प्रतीहारी का प्रवेश)

सुमन्त्र—हा ! महान् कष्ट ।

प्रतीहारी—(सुमन्त्र को सम्बोधित करके) आइये आर्य ! यह स्वामी हैं । इनसे मिलिये ।

सुमन्त्रः—(उपसृत्य) जयतु कुमारः ।
भरतः—तात ! दृष्टस्त्वया लोकाविष्कृतपितृस्नेहः आर्यः ?
सुमन्त्रः—अस्ति किल किष्किन्धा नाम वनौकसां निवासः । तत्र गता इति श्रुतम् ।
भरतः—किं गूहसे, स्पष्टमभिधीयताम् ।
सुमन्त्रः—का गतिः श्रूयताम्—

वैरं मुनिजनस्यार्थे रक्षसा महता कृतम् ।
सीता मायामुपाश्रित्य रावणेन ततो हृता ॥ १ ॥

विवृति—लोके आविष्कृतः पितुः स्नेहः येन सः लोकाविष्कृतपितृस्नेहः = संसार में पितृप्रेम को प्रसिद्ध कर देने वाले, निगूहसे = छिपाते हो । मायामुपाश्रित्य = माया का सहारा लेकर ।

अन्वयः— मुनिजनस्य अर्थे महता रक्षसा वैरं कृतम् ततः रावणेन मायाम् उपाश्रित्य सीता हृता ॥ १ ॥

व्याख्या—मुनिजनस्य ऋषिजनस्य कृते, महता = बलीयसा, रक्षसा राक्षसेन, वैरम् = विरोधः, कृतम् ततः विरोधात् मायामुपाश्रित्य = कपट-रूपं धृत्वा रावणेन सीता रघुकुलवधूः जानकी हृता ॥ १ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

सुमन्त्र—(पास जाकर) कुमार की जय हो ।
भरत—तात ! संसार में पिता के स्नेह को प्रकट करने वाले आर्य रामचन्द्र जी को आपने देखा है ?
सुमन्त्र—हाँ ! किष्किन्धा नाम का वनवासियों का एक स्थान है । वहीं वे सब गये—ऐसा सुना है ।
भरत—क्यों छिपा रहे हैं, स्पष्टतः कहिये ।
सुमन्त्र—विवश होकर कहना ही होगा । मुनिये-मुनियों की रक्षा के लिए बलवान् राक्षसों के साथ शत्रुता हो गई । फिर रावण ने कपट करके सीता को हर लिया ॥ १ ॥

भरतः— कथं हृतेति ? (मोहमुपगतः)

सुमन्त्रः—समाश्वसिहि, समाश्वसिहि ।

भरतः— (पुनःसमाश्वस्य) भोः कष्टम् !

पित्रा च बान्धवजनेन च विप्रयुक्तो
दुःखं महत् समनुभूय वनप्रदेशे ।
भार्यावियोगमुपलभ्य पुनर्मसार्यो
जीमूतचन्द्र इव खे प्रभया वियुक्तः ॥ २ ॥

विवृति—विप्रयुक्तः = वियुक्तः, समनुभूय = अनुभव करके, भार्यायाः वियोगम् भार्यावियोगम् = स्त्री से वियोग, जीमूतचन्द्रः = घनावृत चन्द्र । खे = आकाश में ।

अन्वयः— मम आर्यः पित्रा बान्धवजनेन च विप्रयुक्तः वनप्रदेशे महत् दुःखम् अनुभूय पुनः भार्यावियोगं च उपलभ्य खे जीमूतचन्द्र इव प्रभया वियुक्तः ॥ २ ॥

व्याख्या—मम पूज्यः आर्यो रामः पित्रा महाराजेन बान्धवजनेन च विप्रयुक्तः = वियोगं प्राप्तः, वनप्रदेशे = काननोद्देशे, महद्दुःखं = क्लेशम्, अनुभूय = लब्ध्वा पुनश्च भार्यावियोगम् = अपहृतसीतावियोगमुपलभ्य = प्राप्य, खे = आकाशे, जीमूतचन्द्रः = घनावृतः शशी इव, प्रभया = कान्त्या वियुक्तो जातः ॥ २ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

भरत—क्या सीता हर ली गई (मूर्छित होते हैं)

सुमन्त्र—धीरज रखिये, धीरज रखिये ।

भरत—(कुछ सँभलकर) हा महान् कष्ट ।

मेरे आराध्य राम पिताजनों और बन्धुजनों से वियुक्त हुए । वन में उन्होंने अनेक कष्टों का अनुभव किया, पुनः वे पत्नी का वियोग पाकर तो बादलों से ढके चन्द्र के समान कान्ति-रहित हो गये ॥ २ ॥

भोः किमिदानीं करिष्ये । भवतु दृष्टम् । अनुगच्छतु मां तातः ।

सुमन्त्रः—यदाज्ञापयति कुमारः ।

(उभौ निष्क्रान्तौ)

इति षष्ठोऽङ्कः

हिन्दी रूपान्तर—

हा ! अब मैं क्या करूँगा ? अच्छा, समझ में आ गया । आप मेरे साथ आइये ।

सुमन्त्र—जो कुमार की आज्ञा ।

(दोनों का प्रस्थान)

इति षष्ठ अंक

अथ सप्तमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति तापसः)

तापसः—नन्दिलक ! नन्दिलक !

नन्दिलकः—आर्य ! अयमस्मि ।

तापसः—कुलप्रतिर्विज्ञापयति—

एष खलु स्वदारापहारिणं त्रैलोक्यविद्रावणं रावणं नाशयित्वा राक्षसगणविरुद्धवृत्तं गुणगणविभूषणं बिभीषणमभिषिच्य देवदेवर्षिसिद्धविमलचारित्रां तत्रभवतीं सीतामादाय ऋक्षराक्षसवानरमुख्यैः परिवृतः सम्प्राप्तस्तत्रभवान् शरद्विमलचन्द्राभिरामो रामः ।

विवृति—स्वदारापहारिणम् = अपनी पत्नी को हरनेवाले । त्रैलोक्यविद्रावणम् = तीनों लोकों को ध्वस्त करने वाले, राक्षसगणविरुद्धवृत्तम् = राक्षसों के समूह से भिन्न आचरण करने वाले, ऋक्ष = भालू ।

हिन्दी रूपान्तर—

(तापस का प्रवेश)

तापस—नन्दिलक ! नन्दिलक !

नन्दिलक—आर्य ! मैं उपस्थित हूँ ।

तापस—कुलपति महोदय का आदेश है कि—

रामचन्द्रजी ने अपनी पत्नी का अपहरण करनेवाले तथा तीनों लोकों को सन्तप्त कर देने वाले रावण का वध कर दिया है और राक्षसों से भिन्न कार्य करने वाले गुणों के समूह से विभूषित बिभीषण को लंका का राजा बनाया है । इस समय शरद् ऋतु के चन्द्र के समान सुन्दर रामचन्द्र जी देवों और देवर्षियों से सिद्ध किये गये निर्मल चरित्रवाली सीता को लेकर तथा भालू, [redacted] और वानरों के सहित आ रहे हैं ।

तदद्यास्मिन्नाश्रमपदेऽस्मद्विभवेन यत् संकल्पितव्यम् तत् सर्वं सज्जीक्रियताम्।

नन्दिलकः—आर्य ! सर्वं सज्जीकृतम् , किन्तु·········

तापसः —किमेतत् ?

नन्दिलकः—अत्र बिभीषणसम्बधिनो राक्षसाः, तेषां भक्षणनिमित्तं कुलपतिः प्रमाणम्।

तापसः— किमर्थम्

नन्दिलकः—ते खलु खादन्ति······

तापसः—अलमलं सम्भ्रमेण। बिभीषणविधेयाः खलु राक्षसाः।

नन्दिलकः—नमो राक्षससज्जनाय। (निष्क्रान्तः)

तापसः— (विलोक्य) अयमत्रभवान् राघवः।

विवृति—भक्षणनिमित्तम्=भोजन के लिए, संकल्पितव्यम् (सम्+कल्प +तव्य) संकल्प करना चाहिए। सज्जीकृतम्=न सज्जम् असज्जम् , असज्जम् सज्जम् कृतं सम्पद्यमानम् इति सज्जीकृतम्।

हिन्दी रूपान्तर—

तो आज इस आश्रम में सभी संभव सामग्रियों से जिस प्रकार उनका स्वागत हो, वैसी तैयारी होनी चाहिये।

नन्दिलक—आर्य, सब कुछ तैयार है, किन्तु·········

तापस—यह क्या ?

नन्दिलक—यहाँ तो बिभीषण के सम्बन्धी राक्षस आये हैं। उनके भोजन के विषय में तो कुलपति ही जानें।

तापस—क्यों ?

नन्दिलक—वे तो खाते हैं·········

तापस—नहीं-नहीं, घबड़ाओ नहीं। सब राक्षस बिभीषण के वशवर्ती हैं।

नन्दिलक—इस सज्जन राक्षस को नमस्कार है (प्रस्थान)

तापस—(देखकर) अरे ! ये राघवेन्द्र राम हैं।

जय नरवर ! जेयः स्याद्द्वितीयस्तवारिस्
तव भवतु विधेया भूमिरेकातपत्रा ।
इति मुनिभिरनेकैः स्तूयमानः प्रसन्नैः
क्षितितलमवतीर्णो मानवेन्द्रो विमानात् ।। १ ।। 65

जयतु भवान् जयतु ।

(ततः प्रविशति रामः)

रामः—समुदितबलवीर्यं रावणं नाशयित्वा
जगति गुणसमग्रां प्राप्य सीतां विशुद्धाम् ।

विवृति—विधेया—वशीभूत, एकातपत्रा = एकच्छत्र । समुदितं बलं वीर्यञ्च येन सः तम् समुदितबलवीर्यम् = अतुल बल और पराक्रम से युक्त । गुणैः समग्रा गुणसमग्रा = गुणों से परिपूर्ण ।

अन्वयः—हे नरवर ! जय, द्वितीयस्तवारिः जेयः स्यात् । एकातपत्रा भूमिः तव विधेया भवतु इति प्रसन्नैः अनेकैः मुनिभिः स्तूयमानः मानवेन्द्रः विमानात् क्षितितलमवतीर्णः ।। १ ।।

व्याख्या—हे नरवर = हे नरोत्तम, जय विजयताम् । द्वितीयः = अपरः, तव अरिः = शत्रुः, जेयः = जेतव्यः स्यात् । एकातपत्रा = एकच्छत्रा भूमिः, तव विधेया = त्वदधीना भवतु इति अनेन प्रकारेण प्रसन्नैः = संतुष्टैः अनेकैः मुनिभिः । स्तूयमानः = वन्द्यमानः, मानवेन्द्रः = मनुजेश्वरः, विमानात् = नभोयानात् पुष्पकाख्यात्, अवतीर्णः = अवतरतिस्म ॥ १ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

"हे नरोत्तम ! आपकी जय हो । आप दूसरे शत्रु पर भी विजय प्राप्त करें । एकछत्र वसुन्धरा पर आपका ही अधिकार हो" इस प्रकार प्रसन्न होकर अनेक मुनि आपकी स्तुति कर रहे हैं और आप विमान से पृथ्वी पर अवतीर्ण हो गये हैं ॥ १ ॥

जय हो, आपकी जय हो ।

वचनमपि गुरूणामन्तशः पूरयित्वा
मुनिजनवनवासं प्राप्तवानस्मि भूयः ॥ २ ॥ ८।८७
तापसीनामभिवन्दनार्थमभ्यन्तरं प्रविष्टा चिरायते मैथिली।
(विलोक्य)

अये ! इयं वैदेही !

विवृति—प्राप्य = प्राप्त करके । अन्तशः = अन्त तक, वने वासः वनवासः मुनिजनानां वनवासः इति मुनिजनवनवासः । भूयः = पुनः ।

अन्वयः—समुदितबलवीर्यं रावणं नाशयित्वा जगति गुणसमग्राम् विशुद्धां सीतां प्राप्य अन्तशः गुरूणां वचनमपि पूरयित्वा भूयः मुनिजनवनवासं प्राप्तवान् अस्मि ॥ २ ॥

व्याख्या—समुदितबलवीर्यम् = संभृतबलपराक्रमम् रावणं, नाशयित्वा = व्यापाद्य, जगति = लोके, गुणसमग्राम् विविधगुणपूर्णाम्, विशुद्धाम् = निर्दोषां, सीताम् = मैथिलीम् प्राप्य, अन्तशः = अन्तं यावत्, गुरूणाम् = तातपादानाम् वचनम् चतुर्दशवर्षाणि यावत् वनवासरूपं वचनमपि पूरयित्वा = परिपाल्य, भूयः = पुनः, मुनिजनवनवासम् = मुनिजनाधिष्ठितवनस्थितिम्, प्राप्तवान् अस्मि = समागतोऽस्मि ॥ २ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

(भगवान् रामचन्द्र का प्रवेश)

राम—मैं बलिष्ठ तथा पराक्रमशाली रावण का वध करके लोक में गुणों से प्रसिद्ध तथा विशुद्ध सीता को पाकर और अन्त तक पिता की बातों का पालन करके पुनः मुनिजनों के उसी आश्रम में उपस्थित हुआ हूँ ॥ २ ॥

मुनि-पत्नियों की वन्दना के लिए गई हुई सीता को बहुत विलम्ब हो रहा है । (देखकर) अच्छा सीता आ गई !

(ततः प्रविशति सीता)

सीता— (उपसृत्य) जयत्वार्यपुत्रः ।

रामः— मैथिलि ! अपि जानासि पूर्वाधिष्ठानमस्माकम् जनस्थानम् आसीत्, अपि पश्यसि पुत्रकृतकान् वृक्षान् ?

सीता— आर्यपुत्र ! दृढं खलु पश्यामि ।

(प्रविश्य)

लक्ष्मणः— जयत्वार्यः आर्य !

अयं सैन्येन महता त्वद्दर्शनसमुत्सुकः ।
मातृभिः सह सम्प्राप्तो भरतो भ्रातृवत्सलः ॥ ३ ॥

विवृति—पूर्वाधिष्ठानम् = पहले का निवासस्थान ।

अन्वयः—भ्रातृवत्सलः अयं भरतः त्वद्दर्शनसमुत्सुकः महता सैन्येन मातृभिश्च सह सम्प्राप्तः ॥ ३ ॥

व्याख्या—भ्रातृवत्सलः = भ्रातृप्रियः अयम् भरतः तव कनिष्ठः भ्राता, तव दर्शनाय समुत्सुकः त्वद्दर्शनसमुत्सुकः = भवद्दर्शनायोत्कण्ठितः, महता सैन्येन मातृभिश्च सह = सार्धं, सम्प्राप्तः = समागतः अस्ति ॥ ३ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

(सीता का प्रवेश)

सीता—(पास जाकर) आर्यपुत्र की जय हो ।

राम—क्या जानती हो कि पहले हम लोग इसी जनस्थान में रहते थे ? क्या कृतकपुत्र इन वृक्षों को पहिचानती हो ?

सीता—आर्यपुत्र ! भली-भाँति पहिचान रही हूँ ।

(प्रवेश करके)

लक्ष्मण—आर्य की जय हो । आर्य !

वे भ्रातृप्रिय एवं आपके दर्शन के लिए उत्सुक भरत बड़ी सेना के सहित तथा माताओं के साथ आ गये हैं ॥ ३ ॥

रामः—वत्स, लक्ष्मण ! किमेष भरतः प्राप्तः ?

लक्ष्मणः—आर्य ! अथ किम् ।

रामः—मैथिलि ! श्वश्रूजनपुरोगं भरतमवलोकयितुं विशालीक्रियतां ते चक्षुः ।

सीता—आर्य ! एष्टव्ये काले भरतः आगतः ।

(ततः प्रविशति भरतः समातृकः)

रामः—(विलोक्य) अम्बाः ! अभिवादये ।

सर्वाः—जात ! चिरंजीवी भव ! दिष्ट्या वर्धामहे अवसितप्रतिज्ञं त्वां कुशलिनं सह वध्वा प्रेक्ष्य ।

रामः—अनुगृहीतोऽस्मि ।

सीता—आर्याः ! वन्दे ।

विवृति—श्वश्रू = सास, विशालीक्रियताम् = बड़ा कर लो, एष्टव्ये = अभीष्ट, इच्छित । दिष्ट्या = भाग्य से, अवसितप्रतिज्ञम् = प्रतिज्ञा पूर्ण करने वाले, प्रेक्ष्य = देख कर ।

हिन्दी रूपान्तर—

राम—वत्स लक्ष्मण ! क्या भरत आये हैं ?

लक्ष्मण—आर्य और क्या ?

राम—जानकी ! सास के साथ-साथ भरत को देखने के लिए अपने नेत्रों को विशाल कर लो ।

सीता—आर्यपुत्र ! उचित समय पर भरत आ गये ।

(माताओं के साथ भरत का प्रवेश)

राम—(देखकर) माताओं को प्रणाम ।

सब—पुत्र ! चिरंजीवी हो । बड़े सौभाग्य की बात है कि आज हम लोग प्रतिज्ञा पूर्ण करने वाले तुम्हें सकुशल बहू के साथ देख रहे हैं ।

राम—अनुग्रहीत हूँ ।

सीता—आर्या ! वन्दना करती हूँ ।

सर्वाः—वत्से ! चिरमंगला भव ।
सीता—अनुगृहीताऽस्मि ।
भरतः—आर्य ! अभिवादये । भरतोऽहमस्मि ।
रामः—एह्येहि वत्स ! स्वस्ति, आयुष्मान् भव ।
भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । (सीतां प्रति) आर्ये ! अभिवादये ।
सीता—आर्यपुत्रेण चिरसंचारी भव ।
भरतः—अनुगृहीतोऽस्मि । आर्य ! प्रतिगृह्यताम् राज्यभारः ।
रामः—वत्स ! कथमिव ?
कैकेयी—जात ! चिराभिलषितः खल्वैष मनोरथः ।
रामः—यदाज्ञापयत्यम्बा ।
कैकेयी—वत्स ! द्रुतं गच्छ । अभिलषाभिषेकम् ।
सुमन्त्रः—कुमार ! गृह्यतां राज्यभारः पूर्यताम् च भरतमनोरथः ।

विवृति—चिरं मङ्गलं यस्याः सा चिरमङ्गला = सदा सौभाग्यशालिनी । चिरसंचारी = चिरकाल तक साथ रहने वाले, अभिलषितः = वाञ्छित ।

हिन्दी रूपान्तर—

सब—वत्से ! चिरकाल तक सौभाग्यवती रहो ।
सीता—अनुगृहीत हूँ ।
भरत—आर्य ! यह भरत अभिवादन करता है ।
राम—आओ, आओ वत्स ! कल्याण हो । चिरंजीवी रहो ।
भरत—आर्य ! अनुगृहीत हूँ । (सीता से) आर्ये, वन्दना करता हूँ ।
सीता—आर्यपुत्र के चिर सहचर बनो ।
भरत—अनुगृहीत हूँ । आर्य ! राज्यभार ग्रहण कीजिये ।
राम—वत्स ! यह कैसे ?
कैकेयी—पुत्र ! यह हम लोगों का चिरकालीन मनोरथ है ।
राम—माता की जैसी आज्ञा ।
कैकेयी—वत्स ! शीघ्र जाओ, अभिषेक स्वीकार करो ।
सुमन्त्र—कुमार ! राज्यभार ग्रहण करो और भरत के मनोरथ को पूर्ण करो ।

राम:—गुरोरादेश: प्रमाणम् । (निष्क्रान्तः)

(नेपथ्ये)

जयतु भवान् । जयतु स्वामी । जयतु महाराजः । जयतु देवः । जयतु भद्रमुखः ।

कैकेयी—एते पुरोहिताः कञ्चुकिनः पुत्रकस्य मे विजयघोषम् वर्धयन्त आशीर्भिः पूजयन्ति ।

सुमित्रा—प्रकृतयः परिचारकाः सज्जनाश्च पुत्रकस्य मे विजयम् वर्धयन्ति ।

(ततः प्रविशति कृताभिषेको रामः सपरिवारः)

रामः—(विलोक्य आकाशे) भोस्तात !

स्वर्गेऽपि तुष्टिमुपगच्छ विमुञ्च दैन्यं
कर्म त्वयाभिलषितं मयि यत् तदेतत् ।

विवृति—विजयघोषम् = जय शब्द । प्रकृतयः = प्रजा, परिचारकाः = सेवक ।

विवृति—तुष्टिम् = संतोष, सत्कृतभारवाही = समादर से युक्त भार वहन करने वाले । अभ्युपेतम् = स्वीकृत ।

हिन्दी रूपान्तर—

राम—गुरु आज्ञा शिरोधार्य है । (निकल जाते हैं)

(नेपथ्य में)

आप की जय हो । स्वामी की जय हो । महाराज की जय हो ।
देव की जय हो । भद्रमुख की जय हो ।

कैकेयी—ये पुरोहित और कञ्चुकी विजयनाद करते हुए मेरे पुत्र को आशीर्वाद दे रहे हैं ।

सुमित्रा—प्रजा, सेवक और सज्जन लोग पुत्र की जयध्वनि कर रहे हैं । (तत्पश्चात् अभिषिक्त राम का परिवार सहित प्रवेश)

राम—(आकाश की ओर देखकर) हे तात !

राजा किलास्मि भुवि सत्कृतभारवाही
धर्मेण लोकपरिरक्षणमभ्युपेतम् ॥ ४ ॥

अये ! प्रभाभिर्वनमिदमखिलं सूर्यवत् प्रतिभाति । (विभाव्य) आः ज्ञातम् । सम्प्राप्तं पुष्पकम् दिवि रावणस्य विमानम् । कृतसमयमिदं स्मृतमात्रमुपगच्छति । तत् आगतम् । सर्वैरारुह्यताम् ।

(सर्वे आरोहन्ति)

अन्वयः—हे तात ! स्वर्गेऽपि तुष्टम् उपगच्छ, दैन्यं विमुञ्च । त्वया मयि यत्कर्म अभिलषितम् तत् एतत् । भुवि सत्कृतभारवाही राजा अस्मि किल । धर्मेण लोकपरिक्षणम् अभ्युपेतम् ॥ ४ ॥

व्याख्या—हे तात ! स्वर्गेऽपि तुष्टिम् = सन्तोषमुपगच्छ = प्राप्नुहि । दैन्यम् = कातरताम् , विमुञ्च = परित्यज । भुवि = धरायाम् , सत्कृतभारवाही = समादृतभारधारकः अहम् राजा अस्मि किल । त्वया = भवता मयि यत्कर्म = राज्यस्वीकरणम् अभिलषितम् वाञ्छितम् तदेतत् सम्पन्नमित्यर्थः । धर्मेण = धर्माचरणेन लोकपरिरक्षणम् = संसाररक्षणम् अभ्युपेतम् = स्वीकृतम् ।

हिन्दी रूपान्तर—

स्वर्ग में आप संतोष धारण कीजिये, उस दुःख को दूर कीजिये । मैंने राज्यभार स्वीकार कर लिया है । मैं धर्म से संसार की रक्षा करूँगा ॥ ४ ॥

अरे ! यह वन आभा से सूर्य के समान चमक रहा है । (सोचकर) अच्छा ! ज्ञात हुआ । यह रावण का पुष्पक विमान स्वर्ग में आ गया है । यह समय निश्चित करने पर स्मरण करते ही उपस्थित हो जाता है । तो यह आ गया । आप लोग चढ़ जाइये ॥ ४ ॥

(सब चढ़ते हैं)

राम:—अद्यैव यास्यामि पुरीमयोध्यां
सम्बन्धिमित्रैरनुगम्यमानः ।
लक्ष्मणः—अद्यैव पश्यन्तु च नागरास्त्वां
चन्द्रं सनक्षत्रमिवोदयस्थम् ॥ ५ ॥ 68

विवृति—अद्यैव = आज ही, अनुगम्यमानः (अनु + गम् + यक + शानच् + सु) = अनुसृत होकर, नागराः नगरे भवाः नागराः "तत्र भवः" इत्यण् = नगर-निवासी । सनक्षत्रम् नक्षत्रेण सहितं सनक्षत्रम् = तारों सहित । उदये तिष्ठति, उदयस्थः तम् उदयस्थम् = उदयाचल पर स्थित ।

अन्वयः—सम्बन्धिमित्रैः अनुगम्यमानः अयोध्याम् पुरीम् अद्यैव यास्यामि (लक्ष्मणः) अद्यैव नागराः त्वाम् उदयस्थम् सनक्षत्रम् चन्द्रमिव पश्यन्तु ॥ ५ ॥

व्याख्या—रामोक्तिः—सम्बन्धिमित्रैः = सुग्रीवादिभिः अनुगम्यमानः = अनुस्त्रियमाणः अहम् अयोध्याम् पुरीम् यास्यामि = गमिष्यामि = लक्ष्मणोक्तिः- अद्यैव नागराः = अयोध्यावासिनः, उदयस्थम् = उदयाचलस्थितम् सनक्षत्रम् = सतारकम् चन्द्रमिव, त्वां = रामचन्द्रम् सिंहासनस्थं पश्यन्तु । चिराभिलषितः मे मनोरथः अद्यैव पूर्णतामुपयातु इति लक्ष्मणाभिप्रायः ॥ ५ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

राम—आज ही सम्बन्धियों और मित्रों के साथ मैं अयोध्यापुरी जाऊँगा ।
लक्ष्मण—आज ही वहाँ के निवासी उदयाचल पर स्थित तारों सहित चन्द्र की भाँति आपको देखेंगे ॥ ५ ॥

(भरत-वाक्यम्)

यथा रामश्च जानक्या बन्धुभिश्च समागतः ।
तथा लक्ष्म्या समायुक्तो राजा भूमिं प्रशास्तु नः ॥ ६ ॥

इति सप्तमोऽङ्कः

अन्वयः—यथा जानक्या बन्धुभिश्च समागतः रामः तथा लक्ष्म्या समायुक्तः राजा नः भूमिम् प्रशास्तु ॥ ६ ॥

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, जानक्या = वैदेह्या, बन्धुभिः लक्ष्मणादिभिः समायुक्तः = सहितः रामः भूमिम् शासितवान् तथा अधुनापि लक्ष्म्या = समृद्धया संयुक्तः राजा नः अस्माकं भूमिम् प्रशास्तु ॥ ६ ॥

हिन्दी रूपान्तर—

(भरत-वाक्य)

जिस प्रकार जानकी और बंधुओं सहित राम ने पृथ्वी पर शासन किया था उसी प्रकार इस समय भी लक्ष्मण के सहित राजा हमारी भूमि पर शासन करें ॥ ६ ॥

इति शम्





चेरेपोवेत्स जलद्वार में नौकाएं प्रवेश कर रही हैं।

वोलगा-बाल्ट ;

दो या कभी-कभी
लग जाते थे। वो
दोन के बन्दरगाह
दित्र बजरे और
प्रणाली के तंग द
नहीं सकते थे
बन्द किये जाने
नाविरोध के
कर सकते

उपयुक्त विश्व की सबसे लम्बी नहर है।

इसमें सात बड़े-बड़े जल-बन्ध और तीन पनबिजलीघर, कंक्रीट के बने चार अधिप्लावन-मार्ग, मिट्टी के बने २४ बांध और कोठी बांध, सात पुल और चार जलागार, ६० किलोमीटर नहर और लगभग ३०० किलो-मीटर मानव निर्मित जलमार्ग हैं। ये विभिन्न झीलों और जला-गारों में पोत-चालन के लिए नहर को पार करने के लिए नौकाओं के घाट बने हुए हैं।

इन आंकड़ों के पीछे वर्षों का सर्वेक्षण कार्य, भूविज्ञा-नियों, भूमापनविज्ञों, डिजा-इन इंजीनियरों और निर्माण-कर्मियों की खोजबीन और रचनात्मक काम हैं।

सोवियत संघ के जल-परि-योजना संस्थान की लेनिनग्राद शाखा के खोजी दलों ने मार्ग का